'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

वर्ष ४७] आश्विन २०४५ वि०—अक्टूबर १९८८ [संख्या ७

श्री स्वामी परमहंस गायत्री आनन्दनाथ जी

कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ४७] आश्विन २०४५ वि०—अक्टूबर १६८८ [संख्या ७

१ महा-राष्ट्रीय गुप्तावधूत श्रीस्वामी परमहंस गायत्री आनन्दनाथ : 'कुलभूषण' पं० रमादत्त शुक्ल १
२ श्रीगुरुदेव ईश भट्टारक : पं० वेणीमाधव त्रिपाठी, मुलुण्ड, बम्बई ३
३ मार्ग-दर्शक गुरु-स्वरूप महापुरुष : श्री अमरेन्द्रकुमार दास, बोकारो, इस्पातनगर (बिहार) ४
४ श्री हंस गायत्री आनन्द सत्संग : पं० सतीशकुमार उपाध्याय, प्रयाग ५
५ श्री ललिता-महा-याग क्रम : पं० प्रभातकुमार त्रिपाठी, बम्बई ७
६ कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी 'धन-तेरस', दीप-दान व पूजा-विधि : 'कुल-भूषण', प्रयाग ६
७ कार्तिक अमावास्या 'दीपावली', भगवान् गणेश, भगवती लक्ष्मी की पूजा-विधि १३
८ धनाधीश कुबेर : डा० कमलप्रकाश अग्रवाल, चन्दौसी (उ० प्र०) १८
६ दक्षिणाम्नाय श्रीभुवनेश्वरी-कवच : श्रीकृष्ण पिच्चुमणि अयङ्गार, श्रीरङ्गम् २०
१० श्री ललिता-विजयम् (गताङ्क से आगे) : पूज्य श्री स्वामी अद्वयानन्द जी सरस्वती, त्रिचि २१
११ 'शक्ति-पीठ काशी' विशेषांक (गताङ्क के पृष्ठ २४ से आगे) २५-३२

सम्पादकीय

महर्षि वेद-व्यास विरचित 'लघु-चण्डी' का महत्त्व

वर्षों पूर्व की बात है, पूज्य श्री बप्पा 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त जी शुक्ल दिव्य-चक्षु हो चुके थे। मैं उन्हें विविध विषयक पुस्तकें, पत्र-पत्रिकायें, समाचार-पत्रादि पढ़कर सुनाया करता था। एक बार भगवती की प्रेरणा से मेरे मन में आया कि 'क्यों न मैं उन्हें 'श्रीमद्-देवी-भागवत' पढ़कर सुनाऊँ। इस प्रकार मैं भी उस अपूर्व ग्रन्थ को पूरा पढ़ सकूँगा और घर के अन्य लोग भी उसे सुन सकेंगे। पूज्य श्री बप्पा से जब मैंने अपने मन की बात बताई, तो उन्होंने सहर्ष स्वीकृति दे दी। बस, उसी दिन से रात्रि में उस महा-पुराण का पाठ मैं उन्हें सुनाने लगा। उनके साथ मेरी पूज्या माँ, बड़ी बहन आदि भी उसे सुनने लगीं।

'श्रीमद्-देवी-भागवत्' के इस पारायण के फल-स्वरूप मेरा ध्यान इस बात के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट हुआ कि उसमें श्रीदुर्गा-सप्तशती की कथा तीन स्थलों पर तीन रूपों में वर्णित हुई है। पहले स्थल में वह अत्यन्त संक्षिप्त रूप में है, दूसरे स्थल पर उससे अधिक विस्तृत रूप में और तीसरे स्थल पर और भी अधिक विस्तार से उसका वर्णन दिखाई दिया।

संक्षिप्त रूप मुझे इतना अच्छा लगा कि मैंने उसे 'लघु-चण्डी' के नाम से 'चण्डी' में प्रकाशित करने की सोची। पूज्य श्री बप्पा ने भी समर्थन किया और संवत् २०२७ ('चण्डी' वर्ष २६) के अङ्कों में उसका प्रकाशन भी हुआ किन्तु उस समय वह पूर्ण रूप से प्रकाशित नहीं हो पाई। कदाचित् उसका अवसर उस समय नहीं आया था। इधर उस अपूर्ण 'लघु-चण्डी' की ओर 'चण्डी-कार्यालय' का ध्यान आकृष्ट

(शेष आवरण-पृष्ठ ३ पर)

महा-राष्ट्रीय गुप्तावधूत

श्री स्वामी परमहंस गायत्री आनन्दनाथ

[आविर्भाव : ५ सितम्बर, १८८५/तिरोभाव : ८ जून, १६४५]

[श्रद्धेय श्री के० राम अय्यर अपने उपासना-परायण पूरे परिवार के साथ आज मुम्बई महा-नगरी में निवास करते हुए राज-राजेश्वरी महा-त्रिपुर-सुन्दरी की उपासना के माध्यम से प्रबुद्ध शिक्षित आधुनिक लोगों को शाक्त-साधना का ज्ञान प्रदान करने का महान् कार्य सम्पादित कर रहे हैं। आपके परम गुरु पूज्य श्री स्वामी गायत्री आनन्दनाथ का परिचय यहाँ सर्व-प्रथम दिया गया है। इन्हीं की पुण्य स्मृति में श्री अय्यर जी द्वारा 'श्री हंस गायत्री आनन्द सत्सङ्ग' नामक संस्था की स्थापना की गई। इस संस्था का विवरण आगे पृष्ठ पर द्रष्टव्य है। उसके पूर्व 'श्री गुरुदेव ईश भट्टारक' का परिचय दिया गया है, जिनसे श्री अय्यर जी को महा-पूर्णाभिषेक की प्राप्ति हुई। ४ सितम्बर से ११ सितम्बर, १८८५ तक पूज्य स्वामी जी की अष्ट-दिवसीय जन्म-शताब्दी मनाई गई। उस अवसर पर 'श्रीललिता-महा-याग' का अभूतपूर्व अनूठा अनुष्ठान 'सत्सङ्ग' द्वारा सम्पन्न हुआ। इस 'महा-याग' का संक्षिप्त विवरण सबसे अन्त में दिया गया है। उल्लेखनीय है कि पूज्य स्वामी जी एवं श्री गुरुदेव ईश भट्टारक के अतिरिक्त स्वामी जी के पट्ट-शिष्य श्री सप्तशती आनन्द जी एवं स्वामी जी के भाई श्यामा राव (श्री त्रिपुरा आनन्दनाथ) तथा श्री गुरुदेव के भाई श्री नारायण शास्त्री (पूज्य श्री अन्ना) जैसे अनेक दिव्य साधकों का भी प्रसङ्ग संक्षेप में उक्त परिचयों के अन्तर्गत पढ़ने को मिलता है। श्री गुरुदेव ईश भट्टारक के दीक्षा-गुरु का नामोल्लेख नहीं हुआ है। इससे स्पष्ट है कि देश-व्यापी शाक्त साधकों के सम्बन्ध में शोध की कितनी आवश्यकता है। हमें आशा है कि प्रस्तुत विवरण से अखिल भारतीय शाक्त समाज को इस दिशा में कुछ प्रेरणा मिलेगी।—सं०]

बम्बई में 'श्री शुक्ल शताब्दी समारोह' के उपलक्ष्य में मई, १९८८ को सम्पन्न हुए शाक्त-सम्मेलन के फल-स्वरूप देश के एक और गुप्तावधूत का हमें परिचय मिला, जिससे इस बात की पुनः पुष्टि होती है कि इस पुण्य भूमि में न मालूम कितने कौल महात्मा हो गए हैं, जो चुपचाप निःस्पृह रूप से देश के कल्याण के लिए कठिन साधना में निरन्तर लगे रहे और जिनका किसी को पता भी न चल पाया। ये गुप्तावधूत लगभग १०४ वर्ष पूर्व ५ सितम्बर, १८८५ को मद्रास-निवासी एक महाराष्ट्र ब्राह्मण-कुल में आविर्भूत हुए थे। इनके पिता श्री रामराव और माता श्रीमती जानकी बाई अपनी सदाचार-पूर्ण कुल-परम्परा के कारण समाज में सुप्रतिष्ठित थे। अपने छोटे भाई श्याम राव के साथ इनका लालन-पालन बचपन से ही इनकी मातामही श्रीमती सरस्वती बाई के द्वारा हुआ, जो अरणी के जागीरदार तिरुमल राव साहब की बहन और प्रख्यात धर्माचार्य श्री अरणी श्याम राव की धर्म-पत्नी थीं।

बाल्यावस्था में ही ये प्रायः समाधि-दशा में निष्क्रिय-से हो जाया करते थे, जिसे लोगों ने इनकी शारीरिक दुर्बलता समझा और इनके माता-पिता को यह सलाह दी कि इन्हें सरस्वती बाई के भाई श्री अरणी रामचन्द्र राव को गोद में दे दिया जाय। फलतः तिरुपति की पवित्र पहाड़ियों में निर्दिष्ट कर्म-काण्ड हुए और ये गोद में चले गए। तब से इनका नाम 'बाला जी' पड़ गया।

मद्रास के हिन्दू थियोलाजिकल स्कूल में बाला जी ने मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की और परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी बीच श्री स्वामी विवेकानन्द जी का आगमन उक्त स्कूल में हुआ और वे बाला जी से आकृष्ट होकर इनसे पूछ बैठे, 'तुम क्या चाहते हो?' तत्काल ही इन्होंने उत्तर दिया, 'आपका कमण्डलु।' स्वामी जी प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया कि 'समय आने पर तुम इसे प्राप्त करोगे।'

भक्ति-साधना के प्रथम पाठ के साथ ही बाला जी और उनके भाई श्यामा श्री हनुमान की उपासना करने लगे, यद्यपि अभी वे बच्चे ही थे। एक बार उन दोनों ने स्वप्न में देखा कि हनुमान जी उनके सामने प्रकट हुए हैं और उनसे कह रहे हैं कि 'श्री देवी की उपासना करो।' इस स्वप्न के बाद दोनों ने महा-व्रतों का पालन करना प्रारम्भ कर दिया अर्थात् निराहार रहते और रात भर जागरण करते, सोते नहीं। अब इन दोनों का आहार केवल दूध और फल ही रह गया था। साथ ही ये योगाभ्यास भी करने लगे। जब कभी इन्हें कोई कठिनाई प्रतीत होती, श्री आञ्जनेय किसी-न-किसी रूप में इनके सामने प्रकट हो जाते और इन्हें श्री विद्या की उपासना-पद्धति समझा देते।

कालान्तर में वाराणसी से एक सिद्ध योगी इन्हें ढूँढ़ते हुए आए और इन्हें श्री महा-देवी की एक सुन्दर प्रतिमा दी। साथ ही इन्हें और इनके भाई को दीक्षा देकर श्रीदत्त-चिन्ह-नाथ-सम्प्रदाय के नादानुसन्धान-प्रतीक से विभूषित किया। तब से ये दोनों अपने दीक्षा-नामों से प्रसिद्ध हुए—'श्री हंस गायत्री आनन्द' और 'श्री त्रिपुरा गायत्री आनन्द'।

श्री हंस गायत्री आनन्द प्रायः एकान्त में ध्यान और साधना करने के लिए जंगलों में चले जाया करते। यहाँ तक कि १४ वर्ष की किशोरावस्था में वे नीलगिरि के निकट दोड्डा-बड्डा पहाड़ियों में चले गए थे और वहाँ ध्यानस्थ रहे थे। जङ्गल के लोग इन्हें बड़ा प्यार करते और सम्मान भी देते थे। उनके साथ ये लगभग चार महीनों तक रहे। एक बार ये बाबा बडेन की पहाड़ियों पर अवस्थित श्री दत्तात्रेय की समाधि-स्थली को चले गए थे और वहाँ समाधि का अभ्यास किया था।

इन दोनों भाइयों ने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए निरन्तर आध्यात्मिक साधनाओं का अभ्यास किया। जगज्जननी ब्रह्म-विद्या के विविध स्वरूपों एवं अवतारों की उपासना की और विलक्षण सिद्धियाँ प्राप्त कीं। अपनी आध्यात्मिक प्रगति को परखने के लिए समय-समय पर वे कुछ चामत्कारिक कार्य भी किया करते थे, जैसे मरे हुए व्यक्ति को पुनर्जीवित तक कर देना। उनके ऐसे दृष्टान्त आज भी अनेक प्रत्यक्ष-दर्शी लोगों के मुख से सुने जा सकते हैं।

नाम और यश से सर्वथा दूर रहते हुए ये दोनों महात्मा देवी माता की भक्ति में सदा तन्मय रहते थे। प्रत्येक वर्ष नवरात्र के महोत्सवों के अवसर पर और प्रायः पूरे वर्ष भर सैकड़ों दरिद्र लोगों को उनके निर्देशन में भोजन कराया जाता। किसी प्रकार का जाति या वर्ण-भेद न किया जाता। स्वामी जी की मातामही, जो १०८ वर्ष की पूर्णायु तक जीवित रहीं, इनके इस सारे आध्यात्मिक जीवन में सदा सहायिका रहीं। सन् १९२० में एक वैष्णव युवक स्वामी जी के सम्पर्क में आया, जो श्री स्वामी विवेकानन्द से प्रभावित होकर स्वयम्भू संन्यासी के रूप में इधर-उधर पर्यटन करता-फिरता था। स्वामी जी ने उसे विधिपूर्वक दीक्षा दी। वह सन् १९४३ के अन्त तक उनके प्रमुख शिष्य के रूप में उनकी सेवा में रहा, जब कि उन्होंने नश्वर देह का त्याग कर महा-प्रयाण किया और पराम्बा के चरण-कमलों को प्राप्त किया। उनके ये शिष्य अपने दीक्षा-नाम 'श्री स्वामी सप्तशती आनन्द' से प्रसिद्ध हुए। इन्हें 'बाल-ब्रह्मचारी' भी कहते हैं। इन्हीं की कृपा से श्री के० राम अय्यर श्रीविद्या की उपासना में दीक्षित हुए और साधना में प्रगति करते हुए इस स्तर को पहुँचे कि आज मुम्बई की 'श्री हंस गायत्री आनन्द सत्सङ्ग' नामक प्रतिष्ठित संस्था के सर्व-मान्य एवं पूजनीय अध्यक्ष ही नहीं हैं, अपनी गौरव-मयी गुरु-परम्परा के अनुरूप मुम्बई-जैसी भौतिकता-प्रधान नगरी में भी, आध्यात्मिकता का उज्ज्वल सौम्य प्रकाश अहर्निश प्रसारित कर लोक-कल्याण का महत् कार्य इस कठिन कलि-काल में भी सहज ही सम्पन्न कर रहे हैं।

धन्य हैं महान् गुप्तावधूत श्री स्वामी परमहंस गायत्री आनन्दनाथ, जिनकी तपोपूत साधना का प्रभाव आज भी प्रत्यक्ष है।

श्री गुरुदेव ईश भट्टारक

[आविर्भाव : १० दिसम्बर, १६०६/तिरोभाव : १० जून, १६६६]

परम पूज्य श्री ईश भट्टारक एक महान् वैदिक विद्वान् तो थे ही, साथ ही महा-विद्या 'श्री विद्या' के विशेषज्ञ भी थे। साथ ही आर्ष धर्म में पूर्ण निष्णात थे। यहाँ तक कि उनके भक्त उन्हें साक्षात् कामेश्वर—श्रीपरम शिव का अवतार ही मानते थे। उन्होंने मद्रास में 'महती मण्डल' की स्थापना की थी और उसके माध्यम से महा-शक्ति की साधना (क्रियात्मक पूजा) के विविध पक्षों तथा उससे सम्बन्धित शास्त्रों के रहस्यों को समझाने में अपना सारा जीवन उत्सर्ग कर दिया था। उन्होंने प्राचीन महर्षियों की परम्परा और उनके उपदेशों के प्रचार-प्रसार में बड़ा कार्य किया। ये सभी महर्षि तान्त्रिक परम्परा के अनुसार 'नित्य गार्हस्थ्य' जीवन व्यतीत करनेवाले थे।

पूज्य श्री गुरुदेव का जन्म १० दिसम्बर, १६०६ में तमिलनाडु के तंजौर जनपद के नन्निलम तालुके के पोलगाम ग्राम के वैदिक विद्वानों के एक यशस्वी परिवार में हुआ था। आपके पिता आत्रेय-गोत्री थे और उनका नाम था पं० श्रीकृष्ण शर्मा। आपकी माता श्रीमती रुक्मिणी देवी एक अत्यन्त धर्म-निष्ठ महिला थीं। पारिवारिक परम्परा के अनुरूप आपका नाम 'शेषाद्रि शर्मा' रखा गया। आपके भाई श्री नारायण शास्त्री भी वेद के विद्वान् और हिन्दी के पण्डित थे तथा स्कूल में अध्यापक थे। वे भी एक महान् श्रीविद्योपासक थे। श्रीविद्या के रहस्यों को आपने अपने भाई से ही सीखा-समझा था।

श्री गुरुदेव ने वैदिक विद्वत्ता का पूर्णतया अर्जन किया और योग्य विद्यार्थियों को उन्होंने वेद की शिक्षा भी दी। उन्होंने एक स्कूल में अंग्रेजी की भी शिक्षा प्राप्त की। ३० वर्ष की आयु में विवाहित होकर उन्होंने 'परशुराम कल्पसूत्र' के अनुसार 'श्रीविद्या' की दीक्षा माँ के एक महान् उपासक से पाई और तीन वर्ष के अल्प-काल में ही वे एक दिव्य उपासक–'शाम्भवी-याग-तत्पर' बन गए। भगवती की कृपा से उन्होंने अनेक स्तुतियों की रचना की, जो 'श्रीललिता-कामेश्वर-मङ्गल शासन' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सन् १६४५ में अक्षय तृतीया के दिन तिरुवरुर के पाताली वृक्ष के नीचे श्री गुरुदेव को भगवती माँ के दर्शनों का सौभाग्य मिला। तब से वे 'देवी-नाथ गुरुदेव' के नाम से प्रसिद्ध हुए और कालान्तर में वे 'ईश भट्टारक' कहे जाने लगे।

अपनी धर्म-पत्नी श्रीदेवी के साथ पूज्य श्री ईश भट्टारक ने कुछ वर्ष दक्षिण भारत के घने जङ्गलों मे व्यतीत किए। उस अवधि में प्राचीन ऋषियों की परम्परा के अनुसार उनका जीवन निरन्तर तपस्या-मय ही रहा। प्रतिदिन वे अग्निहोत्र आदि किया करते थे। अन्त में वे चित्तूर जनपद में कैलाश कोण जल-प्रपात के पास निवास करने लगे। वहाँ अपने आश्रम के निकट श्री भट्टारक ने गणपति और बाल सुब्रह्मण्य की प्रतिष्ठा की। तब से प्रति वर्ष वहाँ उनके शिष्यों द्वारा मन्त्रोत्सव मनाया जाने लगा।

सन् १६५७ में 'श्री हंस गायत्री आनन्द सत्सङ्ग' के संस्थापक श्री के० राम ऐय्यर को दिव्य प्रेरणा मिली, अपने मूल गुरुदेव श्री परमहंस गायत्री आनन्द से उन्होंने निर्देश पाया और पूज्य श्री गुरुदेव ईश भट्टारक द्वारा अपने छोटे भाई के साथ श्री विद्या महा-पूर्णाभिषक से विभूषित हो गये। तब से 'सत्सङ्ग' आध्यात्मिक रूप से 'महती मण्डल' से संयुक्त है और अनेक गृहस्थों को श्रीविद्या की दीक्षा उससे मिल चुकी है।

वृद्धावस्था और अस्वस्थता के कारण ईश भट्टारक ने कैलाश कोनाई को छोड़कर शालिग्रामम्, मद्रास में 'शिव-शक्ति आश्रमम्' की स्थापना की। यही आश्रम बाद में 'महती मण्डलम्' कहलाया। दूर और निकट के कितने ही शिष्य उनके पास पहुँचते रहते और उनसे उद्बोधन एवं आशीर्वाद पाते रहते।

१० जून, १६७७ को श्री ईश भट्टारक ने भौतिक देह का त्याग किया और ललिताम्बिका में लीन हो गए। चिन्तामणि-गृह से उनकी कृपा का प्रकाश सभी मातृ-भक्तों को बराबर मिलता ही रहता है। जीवन भर वे आत्म-प्रचार से दूर रहे। यद्यपि उन्होंने अनेक चमत्कार-पूर्ण कार्य किए किन्तु अपने शिष्यों को वे सदा मना करते रहे कि उन्हें किसी को बताया न जाये। वे बड़ी सादगी के साथ रहते थे किन्तु सभी दुखी जनों के प्रति वे बड़ी कृपा करते थे और अपने तप द्वारा उनके दुःखों को दूर करने का प्रयास करते रहते थे।

श्रीईश भट्टारक बड़े स्पष्ट शब्दों में यह घोषित किया करते थे कि शिव और शक्ति के वार्तालाप के माध्यम से जो महान् तन्त्रशास्त्र प्रकट हुआ है, वह श्रुति या वैदिक शास्त्रों के समान ही माननीय है। इस सम्बन्ध में किसी को किसी प्रकार की शङ्का नहीं करनी चाहिए।

मार्ग-दर्शक गुरु-स्वरूप महापुरुष

श्री अमरेन्द्रकुमार दास, बोकारो, इस्पातनगर (बिहार)

वैष्णव, शैव और शाक्त आदि उपासकों में तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। साधना का पथ साधक के पूर्व-संस्कारों के आधार पर वर्तमान प्रकृति के गठनानुसार ईश्वर-निर्दिष्ट गुरु द्वारा निर्धारित होता है। इस तरह कोई वैष्णव, कोई शैव और कोई शाक्त हो जाता है। कोई भी व्यक्ति गुरु द्वारा निर्धारित इष्ट की आन्तरिक रूप से उपासना करने के साथ ही अन्य देवी-देवताओं की भी पूजा कर सकता है। यह शास्त्रोक्त है और इसमें कोई दोष नहीं है। इसके सबसे बड़े प्रमाण स्व० करपात्री जी महाराज थे।

आध्यात्मिक साधना के सभी मार्ग उत्कृष्ट हैं। इन मार्गों में एक 'कौल-मार्ग' की विशेषता यह है कि गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी कोई साधक साधना के उच्चतम सोपान तक पहुँच सकता है। पूर्वाग्रहों से मुक्त तथा साधक की अपनी प्रकृति के अनुसार साधना का क्रम गुरु द्वारा निर्धारित होता है। शाक्त-साधना में भगवती महा-शक्ति के किसी एक रूप का ध्यान, पूजन और तदनुकूल मंत्र का जप होता है।

'कौल-मार्ग' में स्व० पंडित देवीदत्त शुक्ल सहित अन्य गण्यमान्य साधक मार्ग-दर्शन हेतु इस युग में भी उपलब्ध थे और खोजने पर आज भी उपलब्ध हैं।

प्राचीन काल में आदि शङ्कराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, वामा क्षेपा, विवेकानन्द आदि और इधर श्यामानन्दनाथ, योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति, हरिशास्त्री दाधीच, स्वामी अक्षोभ्यानन्द सरस्वती, कालीचरण पन्त, गुप्तावतार बाबा श्री जैसे महापुरुष तो बहुत चर्चित रहे, लेकिन अब भी ऐसे कितने ही महा-पुरुष हैं, जिन्होंने इस उपासना का तत्त्व-दर्शन श्रेष्ठ रूप में किया और कराया है। अधिकारी व्यक्ति उनसे दीक्षित और उपासना-रत होकर अपना जीवन सफल भी कर रहे हैं।

यह वास्तव में बड़े हर्ष और गौरव की बात है कि 'चण्डी' के पृष्ठों में उक्त प्रकार के महा-पुरुषों का सचित्र परिचय समय-समय पर प्रायः प्रकाशित होता रहता है। यह सत्य है कि ऐसे महा-पुरुष स्वभावतः अपने प्रचार एवं प्रकाशन से दूर ही रहते हैं। क्या ही अच्छा हो कि ऐसे महा-पुरुषों से दीक्षा या मार्ग-दर्शन प्राप्त करनेवाले बन्धु उनका सचित्र परिचय 'चण्डी' में प्रकाशित करवाने के प्रति सजग और तत्पर हों, जिससे उनके निकटस्थ अन्य जिज्ञासु साधक भी उनके ज्ञान और अनुभव से लाभ उठा सकें।

'श्रीहंस गायत्री आनन्द सत्संग'

सद्गुरु श्रीपरमहंस गायत्री आनन्दनाथ द्वारा ८ जून, १६५० को महा-समाधि लेने के तीन मास के भीतर ही उनके सुयोग्य भक्त श्री के० ऐय्यर जी ने उक्त 'सत्सङ्ग'-संस्था की स्थापना ५ सितम्बर, १६४५ को कर दी थी। श्री ऐय्यर जी को १६ वर्ष की किशोरावस्था में ही परमहंस जी के सर्व-प्रमुख नैष्ठिक ब्रह्मचारी शिष्य श्री स्वामी सप्तशती आनन्द जी से भगवती के मन्त्र की दीक्षा मिल चुकी थी। १६४५ के प्रारम्भ में वे पूर्णाभिषिक्त हो चुके थे और स्वयं स्वामी जी ने उन्हें योग-दर्शन में निष्णात कर उन्हें 'श्रीहंस चरणानन्द' दीक्षा- नाम से गौरवान्वित किया था।

'सत्सङ्ग' के अध्यक्ष श्री ऐय्यर जी का जन्म १५ जनवरी, १६१४ को हुआ था अर्थात् 'कौल-कल्पतरु' श्री शुक्ल शताब्दी समारोह में आपने ७५ वर्ष की परिपक्व आयु में भी बड़ी तेजस्विता के साथ भाग लिया। १८ वर्ष की आयु से लेकर ६० वर्ष की आयु तक, लगभग ४२ वर्ष पर्यन्त आपने सांसारिक कर्तव्यों का निर्वाह बड़ी योग्यतापूर्वक किया। दो वर्ष आपने एक प्रकाशन-प्रतिष्ठान में कार्य किया, पाँच वर्षों तक आप एक प्रख्यात उद्योगपति के, जो राज्य-सभा मद्रास के सदस्य भी थे, निजी सचिव रहे, फिर एक वर्ष तक आपने कलकत्ते के एक ब्रिटिश संस्थान में कार्य किया, उसके बाद मुम्बई के एक अमेरिकी प्रतिष्ठान में १६४० से १६७४ तक कार्य-रत रहे।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, १६ वर्ष की आयु में ही भगवती के मन्त्र की दीक्षा ऐय्यर जी को मिल गई थी। अतः उक्त दीर्घ काल तक मद्रास, कलकत्ता और बम्बई जैसी महा-नगरियों में विविध प्रतिष्ठानों में प्रशासकीय दायित्वों का निर्वाह करते हुए भी, आप अपनी आध्यात्मिक साधना के प्रति निरन्तर जागरूक ही नहीं रहे, अपितु अपनी गुरु-परम्परा के पुण्य प्रताप से उस दिशा में प्रशंसनीय प्रगति भी की। फलतः प्रशासकीय कार्यों से अवकाश ग्रहण करने के साथ ही आपने 'सत्सङ्ग' को अपना पूरा समय देकर उसे एक उच्च कोटि की आध्यात्मिक संस्था बना दिया।

पहले-पहल सन् १६३३ में आप स्वामी सप्तशती आनन्द के सम्पर्क में आए, जिनसे आपको प्रसिद्ध श्रीललिता-सहस्रनाम के प्रथम नाम-मन्त्र–'**श्री मात्रे नमः**'–की दीक्षा मिली। तीन वर्षों तक परम भक्ति के साथ आप इसी मन्त्र का अहर्निश जप करते रहे। सन् १६३६ में मद्रास में प्रथम नवरात्र-महोत्सव की पूर्णिमा की रात्रि में, प्रातः २ बजे पूजन की समाप्ति पर आपको अपनी माँ के रूप में भगवती श्री ललिता के अपूर्व दर्शन हुए। उस समय आपकी माँ मदुरै में थीं। इस दृष्टान्त से उक्त नाम-मन्त्र की महिमा की पुष्टि होने के साथ ही यह भी प्रतिपादित होता है कि मन्त्र के सतत जप से निश्चय ही अभीष्ट सिद्धि मिलती है।

अपने उक्त अनुभव के आधार पर ही बाद में पूज्य श्री ऐय्यर जी ने अपने शिष्यों को मन्त्र-जप के प्रति अत्यधिक जागरूक, श्रद्धावान् और निरन्तर सतर्क रहने का उपदेश दिया, जिससे उन्हें भी दिव्य अनुभूतियों का लाभ मिल सके।

सात वर्षों तक आप निरन्तर पूर्वोक्त दोनों महात्माओं का सत्सङ्ग मद्रास उच्च न्यायालय के उद्यान में सायंकाल करते रहे और आध्यात्मिक जीवन में प्रशिक्षित होते रहे। गोवर्धन मठ, पुरी के श्री शङ्कराचार्य ने सन् १६३४ में तीन मास से अधिक समय तक श्रीमद्-भगवद्-गीता पर बड़े ज्ञान-वर्द्धक

प्रवचन किए। उन सबको आपने नियमित रूप से बड़े ध्यान से सुना, जिससे आप बड़े प्रभावित हुए। आपने अपने गुरुदेव श्री स्वामी जी से यद्यपि बड़ा आग्रह किया कि 'मुझे भी योगी बनने का अवसर मिले' किन्तु गुरुदेव ने बताया कि 'आपको गृहस्थ रहते हुए ही साधना-पथ पर अग्रसर होना है।' यही नहीं, मई १९३६ में जब मदुरै में आपका विवाह हुआ, तो पूज्य स्वामी जी प्रत्यक्ष रूप में वहाँ उपस्थित रहे और आपको सफल गृहस्थ जीवन के लिए अपने शुभाशीष दिए।

धीरे-धीरे किन्तु दृढ़तापूर्वक आपको समय-मार्गानुसार महा-त्रिपुर-सुन्दरी की पूजा और चण्डी-पारायण में दीक्षित किया गया। इस सबमें २५ वर्षों का समय लगा। पूज्य श्री स्वामी जी के स्पष्ट निर्देशानुसार आपने चण्डी-नवाक्षरी-मन्त्र का एक करोड़ जप किया और अक्टूबर, १९५५ में शारदीय नवरात्र महोत्सव के अवसर पर अपने ५० युवा शिष्यों के सहयोग से माटुंगा (मुम्बई) के वृहत् 'नप्पू हाल' में एक भव्य महा-यज्ञ का सफल आयोजन सम्पन्न किया। तब से आप माटुंगा-क्षेत्र में 'पूज्य श्रीराम ऐय्यर' के नाम से विख्यात हैं।

साधना में उच्च स्थिति पानेवाले महा-पुरुषों का दिव्य विभूतियों से सम्पर्क बराबर बना रहता है। पूज्य श्री ऐय्यर जी भी अपने ब्रह्मीभूत गुरुदेव से समय-समय पर महत्त्वपूर्ण मार्ग-दर्शन पाया करते हैं। ऐसा ही एक दृष्टान्त यह है कि ब्रह्मीभूत स्वामी जी ने उन्हें मद्रास-तिरुपति के बस-मार्ग पर अराकोनम् के पास अवस्थित एक पर्वतीय जल-प्रपात के पास पहुँचने का निर्देश किया, जिससे श्रीदेवी-नाथ के द्वारा उनका श्रीविद्या-महा-पूर्णाभिषेक सम्पन्न हो सके। निर्देश का उन्होंने पालन किया और १३ मई, १९५७ को पूर्णिमा तिथि में अपने छोटे भाई के साथ वे कौल-पद्धति से महा-पूर्णाभिषिक्त हो गए। उस समय उन्हें 'अमृतेश भट्टारक' दीक्षा-नाम मिला किन्तु श्रीविद्योपासक उन्हें 'हंस-चरणामृतेश आनन्द' नाम से ही जानते हैं।

तब से लगभग ३२ वर्ष हुए, आप पञ्च-तत्त्व-पद्धति से श्रीविद्या-यज्ञों का आयोजन करते आ रहे हैं। आपके पूर्णाभिषिक्त गुरुदेव भी 'ईश भट्टारक' नाम से प्रसिद्ध हैं और उन्होंने मद्रास में 'महती-मण्डपम्' नामक संस्था स्थापित कर रखी है, जिसके सदस्यों में अनेक पूर्णाभिषिक्त उपासक हैं।

पूज्य श्री ऐय्यर जी ने अनेक गृहस्थ उपासकों को श्रीविद्या-पूर्णाभिषेक से सम्पन्न किया है। 'सत्सङ्ग' द्वारा प्रति रविवार को धार्मिक एवं आध्यात्मिक विषय पर साप्ताहिक गोष्ठी होती है, पूर्णिमा के दिन सामूहिक प्रार्थना की जाती है, वैदिक कक्षाएँ लगाई जाती हैं और वार्षिक सद्गुरु-आराधना तथा चण्डी-होम एवं श्रीविद्या-होम के सहित नवरात्र-महोत्सवों के आयोजन किए जाते हैं। पिछले पाँच दशकों से ये कार्यक्रम नियमित रूप से 'सत्सङ्ग' के निर्देशन में होते आ रहे हैं।

महा-गणपति, बालाम्बिका, दुर्गा, त्रिपुरसुन्दरी, शिव-शक्ति आदि से सम्बन्धित अनेक यज्ञों के अतिरिक्त मन्त्र-जप, पूजा और होम तथा श्रीललिता-कोटि-अर्चना का भी सम्पादन 'सत्सङ्ग' के निर्देशन में होता रहा है। सत्सङ्ग के अध्यक्ष द्वारा विविध तांत्रिक एवं उपनिषद्-सम्बन्धी कक्षाएँ भी चलाई गईं। यही नहीं, विशिष्ट विद्वानों को अतिथि-रूप में आमन्त्रित कर 'सत्सङ्ग' के तत्त्वावधान में उनके उद्बोधक भाषण भी कराये गए। अनेक नाम-सङ्कीर्तनों और भजन-समारोहों के आयोजन हुए।

'सत्सङ्ग' के लोक-कल्याणकारी कार्यों के प्रशंसकों में श्रीगुहानन्द मण्डली, मद्रास के संस्थापक श्री चिदानन्दनाथ, गुजरात के सन्त श्री माई मार्कण्ड, परमपूज्य स्वामी हंसानन्द और श्री शङ्कर मठ, माटुङ्गा के अध्यक्ष श्री वेङ्कटेश दीक्षितार जैसे महापुरुषों के नाम उल्लेखनीय हैं।

१९८५ में 'सत्सङ्ग' द्वारा अपने संरक्षक सिद्ध महात्मा श्री हंस गायत्री आनन्द स्वामी जी महाराज की जन्म-शताब्दी बड़े ही भव्य रूप में मनाई गई। 'सौभाग्य-कल्पद्रुम' में निर्दिष्ट 'श्रीललिता-महा-यज्ञ' के साथ ही श्रीशतचण्डी यज्ञ का अभूतपूर्व आयोजन इस अवसर पर किया गया, जिसका विवरण यहाँ दिया जा रहा है—

श्री ललिता महा-याग क्रम

श्रीमहा-शक्ति-यज्ञ का मूल स्रोत वैदिक परम्परा में है। बहुत ही प्राचीन काल से भारत में श्रीवेदव्यास और अन्य महान् महर्षियों ने इस देश में वैदिक, पौराणिक या स्मार्त और तान्त्रिक विविध प्रकार के यज्ञानुष्ठानों की यह परम्परा मानवता के अभ्युदय और कल्याण के लिए प्रवर्तित की है।

महा-देव को प्रसन्न करने के लिए 'महा-रुद्र' और 'अति-रुद्र' जैसे अप्रतिम वैदिक यज्ञों का विधान है। स्मार्त-परम्परा की महत्ता को स्थापित करने के लिए 'शत-चण्डी', 'सहस्र-चण्डी' और 'लक्ष-चण्डी' जैसे यज्ञों का प्रावधान है। स्वयं परम शिव द्वारा श्रीदेवी के समक्ष प्रकाशित तन्त्र-शास्त्र में महा-शक्ति-यज्ञ की महत्ता बताई गई है। 'श्रीललिता-सहस्रनाम' में दो नाम—'महा-याग-क्रमाराध्या' और 'महा-भैरव-पूजिता'—विशेष ध्यान देने योग्य हैं। इनसे महती मातृ-पूजा के इस पक्ष का रहस्योद्घाटन होता है।

'सौभाग्य-कल्पद्रुम' के आठवें अध्याय में 'ललिता-महा-याग-क्रम' का वर्णन किया गया है। यह 'परमानन्द-तन्त्र' की परम्परा के अनुरूप है। सामान्य जनता के ज्ञान के लिए इस महा-याग का संक्षिप्त विवरण यहाँ देना उचित होगा।

महा-शक्ति ललिताम्बिका को प्रसन्न करने के लिए पञ्च-दिवसीय 'श्रीललिता-महा-याग' करना चाहिए। इसमें श्रीविद्या-परम्परा के अनुसार चार महत्त्वपूर्ण उप-शक्तियों के साथ श्रीविद्या की आराधना वैदिक, पौराणिक तथा तान्त्रिक विधि से की जाती है।

सर्व-प्रथम चार द्वारोंवाली 'याग-शाला' को पुण्याहवाचन, वास्तु-पूजा आदि से पवित्र किया जाता है। उसके मध्य में और चारों दिशाओं में कलश-प्रतिष्ठा कर क्रमशः श्रीललिताम्बिका की मध्य में तथा श्रीमहा-गणपति, श्री श्यामा, श्रीवाराही और श्रीबाला त्रिपुर-सुन्दरी की चारों दिशाओं में पूजा करनी होती है। दक्षिण-पूर्व दिशा में 'महा-कारण-कलश' की स्थापना की जाती है और उत्तर-पूर्व में 'होम-कुण्ड' का निर्माण किया जाता है। पाँचों दिन 'श्रीचक्र-यज्ञ' करना होता है, जिनमें प्रथम चार दिन के यज्ञ क्रमशः श्रीमहा-गणपति आदि चार देवताओं के उद्देश्य से होते हैं।

इस महा-याग की अधिष्ठात्री देवता हैं श्रीललिता-राज-राजेश्वरी—परब्रह्म या परमात्मा की परा चित्-शक्ति। (१) श्रीविद्या महा-गणपति विघ्नों और दुष्प्रभावों का निराकरण करते हैं. (२) श्री मातङ्गी, जिन्हें श्यामलाम्बिका या मन्त्रिणी (श्रीललिता महा-राज्ञी की प्रधान मन्त्रिणी) भी कहते हैं, (३) दण्डनाथा विश्व को समस्त शक्तियों और ऊर्जाओं की स्वामिनी हैं, और (४) श्रीबाला त्रिपुर-सुन्दरी प्रकृति की समस्त प्राकृतिक स्फूर्तियों की प्रबल शक्ति-स्वरूपा हैं। ये चारों शक्तियाँ तान्त्रिक परम्परा के 'श्रीपञ्चक-क्रम' के अनुसार श्रीललिता के साथ पूजा किए जाने पर विश्व को शान्ति और समृद्धि प्रदान करती हैं।

उक्त महा-याग सैकड़ों सोम-यागों और एक महा-शक्ति-साधक अपने जीवन भर में जो हजारों श्रीचक्र-नवावरण यज्ञ करते हैं, उनके बराबर प्रभावशाली तथा सर्वाभीष्ट-फल-दायक है।

'श्रीहंस गायत्री आनन्द सत्सङ्ग' द्वारा मुम्बई में उक्त महा-याग पहले-पहल वैदिक विद्वानों और श्रीविद्या के उपासकों के सहयोग से मातु-श्री बेलजी भाई सभा-गृह (नप्पू हाल), चन्द्रावरकर मार्ग, माटुङ्गा में ४ से ११ सितम्बर, १९८५ तक सोत्साह सम्पन्न किया गया। तत्सम्बन्धो कार्यक्रम से इसकी अपूर्व विशेषता को विज्ञ पाठक सहज ही हृदयङ्गम कर सकते हैं—

सामान्य दैनिक कार्य-क्रम

प्रातः ६.३० श्रीमहा-गणपति होम, ७.३० श्रीरुद्राभिषेक, ९ से १२ बजे तक श्रीदेवीभागवत एवं श्रीदुर्गा-सप्तशती-पारायण, सायं ४ से ७ तक श्रीललितोपाख्यान एवं वेद तथा उपनिषद्-पारायण।

श्रीसद्गुरु दत्त—ललिता-महा-याग—श्रीशतचण्डी-महोत्सव (४ से ११-९-८५)

प्रातः ८.३० से १२.३० तक श्रीविद्या-चण्डी-यजन, श्रीदत्त-आवरण-पूजा, श्रीदत्त-सहस्रनाम, श्रीललिता-सहस्रनाम, सायं ४.३० से ७.३० तक श्रीचक्र-नवावरण-पूजा, श्रीललिता-सहस्रनाम / त्रिशती-अर्चना, महा-दोपाराधना, सुवासिनी एवं कुमारी-पूजा, लक्षार्चना (सात दिनों में)।

विशेष कार्यक्रम—श्रीललिता-महा-याग

बुधवार, ४ सितम्बर (अश्विनी) : प्रातः ८ से याग-मन्दिर-प्रवेश, सङ्कल्प, ध्वजारोहण, सर्वतो-भद्र-मण्डल-पूजा, श्रीललिता-महा-याग-कलश-स्थापन, सायं ७ से श्रीविद्या-यजन।

गुरुवार, ५ सितम्बर (भरणी) : प्रातः १० से १२ श्रीविद्या महा-गणपति-यजन।

शुक्रवार, ६ सितम्बर (कृत्तिका) : प्रातः १० से १२ श्रीविद्या-मतंगेश्वरी-यजन।

शनिवार, ७ सितम्बर (रोहिणी) : सायं ६.३० से रात्रि ८.०० श्रीविद्या महा-वाराही-यजन, रात्रि ९ से १० जन्माष्टमी-महोत्सव।

रविवार, ८ सितम्बर (मृगशोर्ष) : प्रातः १० से १२ श्रीविद्या बाला महा-त्रिपुर-सुन्दरी-यजन।

सोमवार, ९ सितम्बर (आर्द्रा) : प्रातः १० से श्रीशतचण्डी - महा - याग, पूर्णाहुति, वसोर्धारा, सुवासिनी एवं कुमारी-पूजा।

भौमवार, १० सितम्बर (पुनर्वसु) : प्रातः १० से श्रीविद्या/ललिता महा-याग श्रीचक्र नवारण-पूजा, श्रीविद्या-यजन, पूर्णाहुति—वसोर्धारा, सुवासिनी एवं कुमारी-पूजा, दम्पति-पूजा, उत्तराङ्ग—कलशोद्वास, अवभृथ—आशीर्वाद।

बुधवार, ११ सितम्बर (पुष्य) : अवधूत-स्वामो परमहंस गायत्री आनन्दनाथ की १०१वीं जयन्ती का महोत्सव—प्रातः ८.३० से १२.३० श्रीसद्गुरु दत्त षोडश अवतार, षोडश कलश-पूजा, सहस्रनामार्चन, श्रीरुद्र-क्रमार्चन, श्रीपुरुष-सूक्त होम, महा-दीपाराधना, सायं ५ से रात्रि ८ श्रीआञ्जनेय-उत्सव, ध्वजारोहण, महा-प्रसाद का वितरण।

उक्त कार्यक्रम के अनुसार आयोजित उक्त भव्य श्रीललिता महा-याग का सचित्र विवरण 'श्रीहंस गायत्री आनन्द सेण्टनरी सोवनिर' (१८८५-१९८५) में प्रकाशित होकर सुरक्षित है। साथ ही बहु-संख्यक फोटो 'सत्सङ्ग' के एलबम में संगृहीत हैं। मुम्बई पहुँच सकनेवाले भक्त-जन सत्सङ्ग-कार्यालय (ब्लाक नं० ३, 'नर्मदा-निवास', प्लाट नं २१०-सी, डा० अम्बेदकर मार्ग, माटुङ्गा) से सम्पर्क स्थापित कर उस सबको देखकर अपने को कृतार्थ कर सकते हैं।

कार्तिक
कृष्ण त्रयोदशी

धन-तेरस

दीप-दान
पूजा-विधि

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को सायं-काल सन्ध्या आदि करके यमराज के लिये 'दीप-दान' देना चाहिये। इसके लिये अपने घर से बाहर एक दीपक रखना चाहिये। दीपक रखते समय निम्न-लिखित प्रार्थना करनी चाहिये—

मृत्युना पाश-हस्तेन कालेन भार्यया सह। त्रयोदश्यां दीप-दानात् सूर्यजः प्रीयताम्॥

अर्थात्—सूर्य-पुत्र यमराज मृत्यु, पाश-धारी काल और अपनी पत्नी सहित त्रयोदशी में दिए 'दीप-दान' से प्रसन्न हों।

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी की रात्रि के पहले पहर में विघ्न-विनाशक धन्वन्तरि की पूजा आरोग्य, आयुष्य और सुख-प्राप्ति की कामना से करनी चाहिये। यथा—

[१] आचमन, [२] सङ्कल्प, [३] आत्म-शोधन

पहले से रक्खे हुये शुद्ध जल-पात्र (पंच-पात्र) और आचमनी द्वारा दाहिने हाथ में जल लेकर तीन बार आचमन करे। यथा—

१ ॐ आम-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा, २ ॐ विद्या-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा, ३ ॐ शिव-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा।

तीन बार आचमन करने के बाद पंच-पात्र से पुनः जल लेकर दाहिने हाथ की जूठी हथेली को स्वच्छ करे। ऐसे स्वच्छ दाहिने हाथ की हथेली में पुनः बाँयें हाथ द्वारा आचमनी से जल, अक्षत, पुष्पादि लेकर पूजा का सङ्कल्प पढ़े—

ॐ तत्सत् अद्यैतस्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीय-प्रहरार्द्धे श्वेत-वराह-कल्पे जम्बू-द्वीपे भरत-खण्डे अमुक-प्रदेशे अमुक-पुण्य-क्षेत्रे कलियुगे कलि-प्रथम-चरणे अमुक-सम्वत्सरे कार्तिक-मासे कृष्ण-पक्षे त्रयोदशी-तिथौ अमुक-वासरे अमुक-गोत्रोत्पन्नो अमुक-नाम-शर्मा श्रीधन्वन्तरि-देवता-प्रीति-पूर्वक आयुष्य-आरोग्य-ऐश्वर्य-अभिवृद्धचर्थं श्रीधन्वन्तरि-पूजनमहं करिष्यामि।

अर्थात्—ॐ तत्सत् (ब्रह्म ही एक-मात्र सत्य है)। आज ब्रह्माके प्रथम दिवस के इस दूसरे पहर में, श्वेत-वराह नामक कल्प में, 'जम्बू' नामक द्वीप में, 'भरत' के भू-खण्ड में, अमुक नामक 'प्रदेश' में, अमुक पवित्र 'क्षेत्र' में, 'कलि-युग' में, 'कलि' के प्रथम चरण में, अमुक 'सम्वत्सर' में, कार्तिक 'मास' में, कृष्ण 'पक्ष' में, त्रयोदशी 'तिथि' में, अमुक 'दिवस' में, अमुक 'गोत्र' में उत्पन्न, अमुक 'नाम' वाला 'शर्मा', श्री धन्वन्तरि देवता की प्रसन्नता-पूर्वक आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य की अभिवृद्धि के लिए मैं श्रीधन्वन्तरि की पूजा करूँगा।

इस प्रकार संकल्प पढ़कर दाहिने हाथ में लिया हुआ जल अपने सम्मुख छोड़ दे।

संकल्प पढ़ने के बाद निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुये पूजा-द्रव्य पर और अपने ऊपर जल छिड़के—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ।।

अर्थात्—अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी दशा में हो, जो कमल-नयन इष्ट-देवता का स्मरण करता है, वह बाहर और भीतर दोनों प्रकार से पवित्र हो जाता है ।

[४] ध्यान, [५] आवाहन, [६] पुष्पाञ्जलि, [७] स्वागत

आत्म-शोधन के बाद श्री धन्वन्तरि-देवता का ध्यान पहले से प्रज्वलित अपने सम्मुख रक्खे हुये घी के दीपक की लौ में करे । यथा—

चतुर्भुजं पीत-वस्त्रं सर्वालङ्कार-शोभितम् । ध्याये धन्वन्तरिं देवं सुरासुर-नमस्कृतम् ।।१
युवानं पुण्डरीकाक्षं सर्वाभरण-भूषितम् । दधानममृतस्यैव कमण्डलु श्रिया-युतम् ।। २
यज्ञ-भोग-भुजं देवं सुरासुर-नमस्कृतम् । ध्याये धन्वन्तरिं देवं श्वेताम्बर-धरं शुभम् ।।३

अर्थात्—मैं चार भुजाओंवाले, पीले वस्त्र पहने हुये, सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित, सुरों और असुरों द्वारा वन्दित भगवान् धन्वन्तरि का ध्यान करता हूँ ।।१।। तरुण, कमल-नयन, सभी अलंकारों से विभूषित, अमृत-पूर्ण कमण्डलु लिये हुये, यज्ञ-भाग को खानेवाले, देवों और दानवों से वन्दित, श्री से युक्त, भगवान् धन्वन्तरि का मैं ध्यान करता हूँ ।।२-३।।

श्री धन्वन्तरि-देवता का ध्यान करने के बाद आवाहन करे । यथा—

आगच्छ देव-देवेश ! तेजोराशे जगत्-पते ! क्रियमाणां मया पूजां गृहाण सुर-सत्तम !
।। श्रीधन्वन्तरि-देवं आवाहयामि ।।

अर्थात्—हे देवताओं के ईश्वर ! तेज-सम्पन्न हे संसार के स्वामिन् ! हे देवोत्तम ! आइए, मेरे द्वारा की जानेवाली पूजा को स्वीकार करें ।

।। मैं भगवान् श्रीधन्वन्तरि का आवाहन करता हूँ ।।

आवाहन करने के बाद नीचे का मन्त्र पढ़ कर उन्हें आसन के लिये पाँच पुष्प अञ्जलि में लेकर अपने सामने छोड़े—

नाना-रत्न-समायुक्तं कार्त-स्वर-विभूषितम् । आसनं देव-देवेश ! प्रीत्यर्थं प्रति-गृह्यताम् ।।
।। श्रीधन्वन्तरि-देवाय आसनार्थे पञ्च-पुष्पाणि समर्पयामि ।।

अर्थात्—हे देवताओं के ईश्वर ! विविध प्रकार के रत्न से युक्त स्वर्ण-सज्जित आसन को प्रसन्नता हेतु ग्रहण करें ।

।। भगवान् श्रीधन्वन्तरि के आसन के लिये मैं पाँच पुष्प अर्पित करता हूँ ।।

पुष्पांजलि-रूप आसन प्रदान करने के बाद 'श्रीधन्वन्तरि-देव ! स्वागतम्' अर्थात् 'हे भगवान् धन्वन्तरि ! आपका स्वागत है'—यह वाक्य कहे ।

[८] पाद्य, [६] अर्घ्य, [१०] गन्ध (चन्दन) समर्पण

स्वागत कर निम्न-लिखित मन्त्र से पाद्य (पैर धोने हेतु जल) समर्पित करे--

पाद्यं गृहाण देवेश, सर्व-क्षेम-समर्थ, भोः ! भक्त्या समर्पितं देव, लोकनाथ ! नमोऽस्तु ते ।

।। श्रीधन्वन्तरि-देवाय पाद्यं नमः ।।

अर्थात्–सब प्रकार के कल्याण करने में सक्षम हे देवेश्वर ! पैर धोने का जल भक्ति-पूर्वक समर्पित है । उसे स्वीकार करें । हे विश्वेश्वर भगवन् ! आपको नमस्कार है ।

।। भगवान् श्रीधन्वन्तरि को पैर धोने के लिये यह जल है–उन्हें नमस्कार ।।

पाद्य-समर्पण के बाद उन्हें अर्घ्य (शिर के अभिषेक हेतु जल) समर्पित करे । यथा–

नमस्ते देव-देवेश ! नमस्ते धरणी-धर ! नमस्ते जगदाधार ! अर्घ्योऽयं प्रति-गृह्यताम् ।

गन्ध-पुष्पाक्षतैर्युक्तं फल-द्रव्य-समन्वितम् । गृहाण तोयमर्घ्यर्थं परमेश्वर, वत्सल !

।। श्रीधन्वन्तरि-देवाय अर्घ्यं स्वाहा ।।

अर्थात्--हे देवेश्वर ! आपको नमस्कार । हे धरती को धारण करनेवाले ! आपको नमस्कार । हे जगत् के आधार-स्वरूप ! आपको नमस्कार । शिर के अभिषेक के लिये यह जल (अर्घ्य) स्वीकार करें । हे कृपालु परमेश्वर ! चन्दन-पुष्प-अक्षत से युक्त, फल और द्रव्य के सहित यह जल शिर के अभिषेक के लिये स्वीकार करें ।

।। भगवान् श्रीधन्वन्तरि के लिये अर्घ्य समर्पित है ।।

श्री-खण्ड-चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् । विलेपनं सुर-श्रेष्ठ ! चन्दनं प्रति-गृह्यताम् ।।

।। श्रीधन्वन्तरि-देवाय चन्दनं समर्पयामि ।।

अर्थात्--हे देवोत्तम ! मनोहर और सुगन्धित चन्दन शरीर में लगाने हेतु ग्रहण करें ।

[११] पुष्प-समर्पण, [१२] धूप-समर्पण

।। भगवान् श्रीधन्वन्तरि के लिये चन्दन समर्पित करता हूँ ।।

सेवन्तिका वकुल - चम्पक - पाटाब्जैः, पुन्नाग- जाति- करवीर - रसाल - पुष्पैः ।

विल्व-प्रवाल-तुलसी-दल-मल्लिकाभिस्त्वाम्, पूजयामि जगदीश्वर ! मे प्रसीद ।।

।। श्रीधन्वन्तरि-देवाय पुष्पं समर्पयामि ।।

अर्थात्--हे लोकेश्वर ! श्वेत गुलाब (सेमन्ती), बकुल, चम्पा, लाल - पीला कमल, पुन्नाग (लोध्र), मालती, कनेर पुष्पों और बेल, मूँगे, तुलसी तथा मालती की पत्तियों द्वारा मैं आपकी पूजा करता हूँ । मुझ पर आप प्रसन्न हों ।

।। भगवान् श्रीधन्वन्तरि के लिये पुष्प समर्पित करता हूँ ।।

वनस्पति-रसोद्भूतो गन्धाढ्यः सुमनोहरः । आघ्रेयः सर्व-देवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।

।। श्रीधन्वन्तरि-देवाय धूपं समर्पयामि ।।

अर्थात्–वृक्षों के रस से बनी हुई, सुन्दर, मनोहर, सुगन्धित और सभी देवताओं के सूँघने के योग्य यह धूप आप ग्रहण करें ।

।। भगवान् श्रीधन्वन्तरि के लिये मैं धूप समर्पित करता हूँ ।।

[१३] दीप-समर्पण, [१४] नैवेद्य, [१५] आचमन (जल) समर्पण

साज्यं वर्ति-संयुक्तं च वह्निना योजितं मया, दीपं गृहाण देवेश ! त्रैलोक्य-तिमिरापहम् ।
भक्त्या दीपं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने । त्राहि मा निरयाद् घोराद्दीपोऽयं-प्रतिगृह्यताम् ।।
।। श्रीधन्वन्तरि-देवाय दीपं समर्पयामि ।।

अर्थात्––हे देवेश्वर ! घी के सहित और बत्ती से मेरे द्वारा जलाया हुआ, तीन लोकों के अँधेरे को दूर करनेवाला दीपक स्वीकार करें । मैं भक्ति-पूर्वक परमात्मा भगवान् को दीपक प्रदान करता हूँ । इस दीपक को स्वीकार करें और घोर नरक से मेरी रक्षा करें ।

।। भगवान् श्रीधन्वन्तरि के लिये मैं दीपक समर्पित करता हूँ ।।

शर्करा-खण्ड-खाद्यानि दधि-क्षीर-घृतानि च । आहारो भक्ष्य-भोज्यं च नैवेद्यं प्रति-गृह्यताम् ।
।। यथांशतः श्रीधन्वन्तरि-देवाय नैवेद्यं समर्पयामि—ॐ प्राणाय स्वाहा ।
ॐ अपानाय स्वाहा । ॐ व्यानाय स्वाहा । ॐ उदानाय स्वाहा । ॐ समानाय स्वाहा ।।

अर्थात्—शर्करा-खण्ड (बताशा आदि), खाद्य पदार्थ, दही, दूध और घी जैसी खाने की वस्तुओं से युक्त भोजन आप ग्रहण करें ।

।। यथा-योग्य रूप भगवान् श्रीधन्वन्तरि को मैं नैवेद्य समर्पित करता हूँ—प्राण के लिये, अपान के लिये, व्यान के लिये, उदान के लिये और समान के लिये स्वीकार हो ।।

ततः पानीयं समर्पयामि इति उत्तरापोशनम् । हस्त-प्रक्षालनं समर्पयामि । मुख-प्रक्षालनं करोद्वर्तनार्थे चन्दनं समर्पयामि ।

अर्थात्—नैवेद्य के बाद मैं पीने और आचमन (उत्तरापोशन) के लिये, हाथ धोने के लिये, मुख धोने के लिये जल और हाथों में लगाने के लिये चन्दन समर्पित करता हूँ ।

[१६] ताम्बूल-समर्पण, [१७] दक्षिणा, [१८] प्रदक्षिणा

पूगी-फलं महा-दिव्यं नाग-वल्लोदलैर्युतम् । कर्पूरैला-समायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।।
।। श्रीधन्वन्तरि-देवाय मुख-वासार्थं पूगी-फल-युक्तं ताम्बूलं समर्पयामि ।।

अर्थात् पान के पत्तों से युक्त अत्यन्त सुन्दर सुपाड़ी, कपूर और इलायची से प्रस्तुत ताम्बूल आप स्वीकार करें ।

।। भगवान् श्रीधन्वन्तरि के मुख को सुगन्धित करने के लिये सुपाड़ी से युक्त ताम्बूल मैं समर्पित करता हूँ ।।

हिरण्य-गर्भ-गर्भस्थं हेम-वीजं विभावसोः । अनन्त-पुण्य-फलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे ।।
।। धन्वन्तरि-देवाय सुवर्ण-पुष्प-दक्षिणां समर्पयामि ।।

अर्थात्—असीम पुण्य प्रदान करनेवाले स्वर्ण-गर्भित चम्पक पुष्प से मुझे शान्ति प्रदान करिये ।

।। भगवान् श्रीधन्वन्तरि के लिये मैं स्वर्ण-पुष्प-रूपी दक्षिणा प्रदान करता हूँ ।।

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर-कृतानि च । तानि तानि विनश्यन्ति प्रदक्षिणं पदे पदे ।।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं प्रभो ! तस्मात् कारुण्य-भावेन क्षमस्व परमेश्वर ।।
।। श्रीधन्वन्तिर-देवतायै प्रदक्षिणं समर्पयामि ।।

अर्थात्—पिछले जन्मों में जो भी पाप किये होते हैं, वे सब प्रदक्षिणा करते समय एक-एक पग पर क्रमशः नष्ट होते जाते हैं । हे प्रभो ! मेरे लिये कोई अन्य शरण देनेवाला नहीं है, तुम्हीं शरण-दाता हो । अतः हे परमेश्वर ! दया-भाव से मुझे क्षमा करो ।
।। भगवान् श्रीधन्वन्तरि को मैं प्रदक्षिणा समर्पित करता हूँ ।।

कार्तिक अमावास्या

दीपावली

भगवान् गणेश, भगवती लक्ष्मी पूजा-विधि

कार्तिक अमावास्या की रात्रि में गणेश-लक्ष्मी और कुबेर की पूजा की जाती है । इस पूजा हेतु सर्व-प्रथम १ आचमन, २ सङ्कल्प, ३ आत्म-शोधन पृष्ठ ६ के अनुसार करे । 'सङ्कल्प' में 'श्रीधन्वन्तरि-देवता' की जगह 'श्रीगणेश-लक्ष्मी-कुबेर' कहे ।

आत्म-शोधन करने के बाद 'कलश-स्थापना' कर 'वरुण'-पूजा करे । फिर गणेश, नव-ग्रह और षोडश मातृकाओं का पूजन करे । यथा—

[१] कलश-स्थापना हेतु पूजा

कलश की जगह पर मिट्टी और यव छोड़े और यह मन्त्र पढ़े—

ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा ।
दीर्घामनु-प्रसितिमायुषे द्यां देवो वः सविता हिरण्य-पाणिः ।
प्रति-गृभ्णात्वाच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ।।

कलश को धीरे से उठाकर उसी जगह रख दे और यह मन्त्र पढ़े—

ॐ आ जिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः ।
पुनरूर्ज्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरु-धारा पयस्वती पुनर्मा विशताद् रयिः ।।

कलश में जल छोड़े और यह मन्त्र पढ़े—

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भ-सर्ज्जनीस्थो वरुणस्य ऋत-सदन्यसि वरुणस्य ऋत-सदनमसि वरुणस्य ऋत-सदनमासीद ।।

कलश के गले में लाल वस्त्र या मोली लपेटे तथा यह मन्त्र पढ़े—

ॐ वसोः पवित्रमसि शत-धारं वसोः पवित्रमसि सहस्र-धारम् ।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शत-धारेण सुप्वा काम-धुक्षः ।।

कलश में सुपारी छोड़े और यह मन्त्र पढ़े—

ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिः प्रसूतास्ता नो मुंचंत्व ᳪ हसः ।।

कलश में एक रुपये का सिक्का चढ़ावे और यह मन्त्र पढ़े—

ॐ हिरण्य-गर्भः सम-वर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

गन्ध, रोली आदि चढ़ावे और यह मन्त्र पढ़े—

ॐ गन्ध-द्वारां दुराधर्षां नित्य-पुष्टां करीषिणीं । ईश्वरीं सर्व-भूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।

सर्वौषधि छोड़कर यह मन्त्र पढ़े—

ॐ या ओषधीः पूर्वा-जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनैनु बभ्रूणामह ꣳ शतं धामानि सप्त च ।।

सप्त-मृत्तिका छोड़कर यह मन्त्र पढ़े—

ॐ स्योना पृथिवि ! नो भवान्नृक्षरा निवेशिनी । यच्छा नः शर्म स-प्रथाः ।।

दूर्वा चढ़ाकर यह मन्त्र पढ़े—

ॐ काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवानो दूर्वे ! प्रतनु सहस्रेण शतेन च ।।

आम, बड़, गूलर या पीपल के पत्ते डालकर यह मन्त्र पढ़े—

ॐ अश्वत्थे वो निषदनम्पर्णे वो वसतिष्कृत । गोभाज इत्किलासथ यत्स नवथ पूरुषम् ।।

कुशा छोड़कर यह मन्त्र पढ़े—

ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यो सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।

तस्य ते पवित्र-पते पवित्र-पूतस्य यत् कामः पुनेतच्छकेयम् ।।

यव या चावलों से भरा पात्र कलश पर रखकर यह मन्त्र पढ़े—

ॐ पूर्णादवि परापत सु-पूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावह इष मूर्ज्जं ꣳ शत-क्रतो ।।

यह मन्त्र पढ़े और अक्षत छोड़कर वरुण-स्थापन करे—

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनो त्वरिष्टं यज्ञ ꣳ समिमं दधातु ।

विश्वे-देवा स इह मादयन्ताम् ॐ प्रतिष्ठ ।।

फिर इस मन्त्र से आवाहन आदि करे—

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुण ! इहागच्छ, इह तिष्ठ । मम पूजां गृहाण ।

तदनन्तर निम्न मन्त्रों से श्रीवरुणदेव का पाद्यादि उपचारों से क्रमशः पूजन करे ।

१ ॐ वरुणाय नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि । २ ॐ वरुणाय नमः शिरसि अर्घ्यं समर्पयामि । ३ ॐ वरुणाय नमः गन्धाक्षतं समर्पयामि । ४ ॐ वरुणाय नमः पुष्पं समर्पयामि । ५ ॐ वरुणाय नमः धूपं घ्रापयामि । ६ ॐ वरुणाय नमः दीपं दर्शयामि । ७ ॐ वरुणाय नमः नैवेद्यं समर्पयामि । ८ ॐ वरुणाय नमः आचमनीयं समर्पयामि । ९ ॐ वरुणाय नमः ताम्बूलं समर्पयामि । १० ॐ वरुणाय नमः दक्षिणां समर्पयामि ।

पूजा कर चुकने पर नीचे के मन्त्रों से प्रार्थना करे—

सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः । आयान्तु ममभक्तस्य दुरित-क्षय-कारकाः ।।१

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः । मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृ-गणाः स्मृताः ।।२

कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्त-द्वीपा वसुन्धरा । ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः साम-वेदोप्यथर्वणः ॥३
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः । देव-दानव-सम्वादे मथ्यमाने महोदधौ ॥४
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ ! विधृतो विष्णुना स्वयं । त्वत्तः सर्वाणि तीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ॥५
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः । शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ॥६
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः स-पैतृकाः । त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः काम-फल-प्रदाः ॥७
त्वत्-प्रसादादिमं कर्म कर्तुमीहे जलोद्भव ! सान्निध्यं कुरु मे देव ! प्रसन्नो भव सर्वदा ॥८

[२] भगवान् गणेश की पूजा

सर्व-प्रथम भगवान् गणेश का पूजन करने के लिए एक सुडौल सुन्दर सुपाड़ी को जल से स्वच्छ कर मौली (रक्त-पीत-सूत) से लपेटकर कलश के सम्मुख किसी आधार (चाँदी, पीतल या किसी शुभ धातु या मिट्टी के पात्र) पर स्थापित करे। तब उसमें पहले भगवान् गणेश के आविर्भाव की भावना निम्न मन्त्र से गन्धाक्षत छोड़कर करे—

ॐ गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रिय-पति ँ हवामहे । निधीनां त्वा निधि-पति ँ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ।

इस मन्त्र से अक्षत छोड़कर समझे कि श्री गणेश जी का वहाँ आविर्भाव हा गया है। तब निम्न मन्त्र से भक्ति-पूर्वक उनका आवाहन आदि करे। यथा—

ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीगणपते ! इहागच्छ, इह तिष्ठ, मम पूजां गृहाण ।

अब निम्न मन्त्र से सुपाड़ी को लेलिहानी मुद्रा दिखाते हुए प्राण-प्रतिष्ठा करे—

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्व बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनो त्वरिष्टं यज्ञ ँ समिमं दधातु । विश्वे-देवा स इह मादयन्ताम् ॐ प्रतिष्ठ ।

इसके बाद सुपाड़ी पर जल आदि चढ़ाते हुए निम्न मन्त्रों से भगवान् गणेश का पाद्यादि उपचारों से पूजन करे—

१. ॐ गणपतये नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि । २. ॐ गणपतये नमः शिरसि अर्घ्यं समर्पयामि । ३. ॐ गणपतये नमः गन्धाक्षतं समर्पयामि । ४. ॐ गणपतये नमः पुष्पं समर्पयामि । ५. ॐ गणपतये नमः धूपं घ्रापयामि । ६. ॐ गणपतये नमः दीपं दर्शयामि । ७. ॐ गणपतये नमः नैवेद्यं समर्पयामि । ८. ॐ गणपतये नमः आचमनीयं समर्पयामि । ९. ॐ गणपतये नमः ताम्बूलं समर्पयामि । १०. ॐ गणपतये नमः दक्षिणां समर्पयामि ।

अन्त में हाथ जोड़कर भगवान् गणेश से प्रार्थना करे—

अनेन पूजनेन श्रीगणपतिः प्रीयताम् ।

[३] नव-ग्रह-पूजन

नौ ग्रहों के संक्षिप्त पूजन के लिए कलश के सम्मुख एक पात्र या मिट्टी का प्याला रख ले। फिर बाएँ हाथ में गन्धाक्षत लेकर भावना से सामूहिक रूप में उन सबका निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए आवाहन करे। यथा—

ॐ सूर्य-चन्द्र-मङ्गल-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनिश्चर-राहु-केतु-नव-ग्रहेभ्यो नमः । ॐ नव-ग्रहाः ! इहागच्छ, इह तिष्ठ, मम पूजां गृहाण ।

यह मन्त्र पढ़कर उक्त पात्र में गन्धाक्षत छोड़े। फिर निम्न मन्त्रों से प्रत्येक मन्त्र के आदि में ॐ लगाकर क्रमशः सूर्यादि नौ ग्रहों का पाद्यादि उपचारों से पूजन करे। यथा—

१. सूर्यादि-नव-ग्रहेभ्यो नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि । २. सूर्यादि-नव-ग्रहेभ्यो नमः शिरसि अर्घ्यं समर्पयामि । ३. सूर्यादि-नव-ग्रहेभ्यो नमः गन्धाक्षतं समर्पयामि । ४. सूर्यादि-नव-ग्रहेभ्यो नमः पुष्पं समर्पयामि । ५. सूर्यादि-नव-ग्रहेभ्यो नमः धूपं घ्रापयामि । ६. सूर्यादि-नव-ग्रहेभ्यो नमः दीपं दर्शयामि । ७. सूर्यादि-नव-ग्रहेभ्यो नमः नैवेद्यं समर्पयामि । ८. सूर्यादि-नव-ग्रहेभ्यो नमः आचमनीयं समर्पयामि । ९. सूर्यादि-नव-ग्रहेभ्यो नमः ताम्बूलं समर्पयामि । १०. सूर्यादि-नव-ग्रहेभ्यो नमः दक्षिणां समर्पयामि ।

फिर हाथ जोड़कर सभी ग्रहों की प्रार्थना करे। यथा—

ब्रह्मा-मुरारिस्त्रिपुरान्त-कारी, भानुः शशी भूमि-सुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रः शनि-राहु-केतवः, सर्वे ग्रहाः शान्ति-करा भवन्तु ॥

[४] षोडश मातृका-पूजन

षोडश मातृकाओं के संक्षिप्त पूजन के लिए नव-ग्रहों के पात्र के पास ही उसी प्रकार का दूसरा पात्र रखे। फिर दायें हाथ में गन्धाक्षत लेकर पूर्व-वत् सामूहिक रूप में निम्न मन्त्र से उनका आवाहन करे—

ॐ गौरी-पद्मा-शची-मेधा-सावित्री-विजया-जया-देवसेना-स्वधा-स्वाहा-माता-लोक-माता-हृष्टि-पुष्टि-तुष्टि-कुल-देवता-षोडश-मातृकाभ्यो नमः । ॐ षोडश-मातृकाः ! इहागच्छ, इह तिष्ठ, मम पूजां गृहाण ।

यह मन्त्र पढ़कर निर्दिष्ट पात्र में गन्धाक्षत छोड़े। फिर क्रमशः निम्न मन्त्रों से सोलह मातृकाओं का पाद्यादि उपचारों से पूजन करे। प्रत्येक मन्त्र के आदि में पूर्व-वत् 'ॐ' जोड़ ले। यथा—

१. गौर्यादि-षोडश-मातृकाभ्यो नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि । २. गौर्यादि-षोडश-मातृकाभ्यो नमः शिरसि अर्घ्यं समर्पयामि । ३. गौर्यादि-षोडश-मातृकाभ्यो नमः गन्धाक्षतं समर्पयामि । ४. गौर्यादि-षोडश-मातृकाभ्यो नमः पुष्पं समर्पयामि । ५. गौर्यादि-षोडश-मातृकाभ्यो नमः धूपं घ्रापयामि । ६. गौर्यादि-षोडश-मातृकाभ्यो नमः दीपं दर्शयामि । ७. गौर्यादि-षोडश-मातृकाभ्यो नमः आचमनीयं समर्पयामि । ९. गौर्यादि-षोडश-मातृकाभ्यो नमः ताम्बूलं समर्पयामि । १०. गौर्यादि-षोडश-मातृकाभ्यो नमः दक्षिणां समर्पयामि ।

फिर हाथ जोड़कर सोलह मातृकाओं की प्रार्थना करे—

ते सम्मता जन-पदेषु धनानि तेषां, तेषां यशांसि न च सीदति धर्म-वर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मज-भृत्य-दारा, येषां सदाऽभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥

१ ॐ श्रीगणेशाय नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि । २ ॐ श्रीगणेशाय नमः शिरसि अर्घ्यं समर्पयामि । ३ ॐ श्रीगणेशाय नमः गन्धाक्षतं समर्पयामि । ४ ॐ श्रीगणेशाय नमः पुष्पं समर्पयामि । ५ ॐश्रीगणेशाय नमः धूपं घ्रापयामि । ६ ॐ श्रीगणेशाय नमः दीपं दर्शयामि । ७ ॐ श्रीगणेशाय नमः नैवेद्यं समर्पयामि । ८ ॐ श्रीगणेशाय नमः आचमनीयं समर्पयामि । ९ ॐ श्रीगणेशाय नमः ताम्बूलं समर्पयामि ।

पूजन कर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे--

ॐ रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष !रक्ष त्रैलोक्य-रक्षक! भक्तानामभयं कर्त्ता ! त्राता भव भवार्णवात् ।।

।। अनेन पूजनेन श्रीगणेशः ऋद्धि-सिद्धि-सहितः प्रीयताम्, नमो नमः ।।

इसके बाद श्रीलक्ष्मी-मूर्ति का पूजन उसी प्रकार निम्न मन्त्रों द्वारा करे—

१ ॐ श्रीलक्ष्मी-देव्यै नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि । २ ॐ श्रीलक्ष्मी-देव्यै नमः शिरसि अर्घ्यं समर्पयामि । ३ ॐ श्रीलक्ष्मी-देव्यै नमः गन्धाक्षतं समर्पयामि । ४ ॐ श्रीलक्ष्मी-देव्यै नमः पुष्पं समर्पयामि । ५ ॐ श्रीलक्ष्मी-देव्यै नमः धूपं घ्रापयामि । ६ ॐ श्रीलक्ष्मी-देव्यै नमः दीपं दर्शयामि । ७ ॐ श्रीलक्ष्मी-देव्यै नमः नैवेद्यं समर्पयामि । ८ ॐ श्रीलक्ष्मी-देव्यै नमः आचमनीयं समर्पयामि । ९ ॐ श्रीलक्ष्मी-देव्यै नमः ताम्बूलं समर्पयामि ।

पूजन कर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे--

ॐ भवानि ! त्वं महा-लक्ष्मीः सर्व-काम-प्रदायिनो । प्रसन्ना सन्तुष्टा भव देवि! नमोऽस्तु ते ।।

।। अनेन पूजनेन श्रीलक्ष्मी देवी प्रीयताम्, नमो नमः ।।

इस अवसर पर घर या व्यापार-सम्बन्धी आय-व्यव की बही/कापी, लेखनी, तिजोरी आदि में दाईं अनामिका से रोचना, लालचन्दन या रोलो द्वारा 'स्वस्तिक' का चिह्न बनाकर उक्त सामग्रियों पर निम्न मन्त्रों द्वारा गन्धाक्षत-पुष्प चढ़ाकर संक्षिप्त पूजन कर लेना चाहिए--

१ बही, लेखनी पर-ॐ सरस्वत्यै नमः । अनेन पूजनेन श्रीसरस्वती देवी प्रीयताम्. नमो नमः ।

२ तिजोरी, थैली, तराजू पर-ॐ कुबेराय नमः । अनेन पूजनेन धनाध्यक्ष श्रीकुबेरः प्रीयताम्, नमो नमः ।

(१) कार्तिक चतुर्दशी को 'नरक-चतुर्दशी' कहते हैं। इस दिन तेल लगाकर अपामार्ग या चकबक की पत्तियों के गुच्छे से शरीर पर जल छिड़ककर उस गुच्छे को अपने चारों ओर घुमाकर स्नान करना चाहिए । ऐसा करने से साल भर चोरों का भय नहीं रहता । इस दिन सभी को यमदेव और भीष्म पितामह के लिए तीन जलाञ्जलियाँ देनी चाहिए । सन्ध्या के समय नरक से बचने के लिए यम-देव के लिए चार बत्तियों का दीपक सर्व-प्रथम जलाने के बाद घर में प्रकाश करना चाहिए ।

(२) कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गोवर्द्धन-पूजा, गो-पूजा और अन्न-कूट का विधान है ।

(३) कार्तिक शुक्ल द्वितीया को 'भ्रातृ-द्वितीया' (भैया-दूज) का त्योहार मनाया जाता है ।

(४) इस प्रकार 'दीपावली' के पाँच त्योहार हैं १-धन-तेरस, २ नरक-चतुर्दशी, ३ गणेश-लक्ष्मी-कुबेर-पूजा, ४ गोवर्धन-पूजादि और ५ भ्रातृ-द्वितीया ।

'दीपावली' (अमावास्या) की अर्द्ध-रात्रि 'काल-रात्रि' नाम से प्रख्यात है । दीक्षा-प्राप्त व्यक्ति इस रात्रि में अपने इष्ट-देवता की महा-पूजा करते हैं ।

धनाधीश कुबेर

डा० कमलप्रकाश अग्रवाल, चन्दौसी (उ० प्र०)

महर्षि पुलस्त्य के पुत्र महा-मुनि विश्रवा ने भरद्वाज जी की कन्या इलविला का पाणि-ग्रहण किया। उसी से कुबेर जी की उत्पत्ति हुई। भगवान् ब्रह्मा ने इन्हें समस्त सम्पत्ति का स्वामी बनाया। ये तप करके उत्तर दिशा के लोक-पाल हुए। कैलास के समीप इनकी अलकापुरी है।

श्वेत-वर्ण, तुन्दिल शरीर, अष्ट-दन्त एवं तीन चरणोंवाले, गदा-धारी कुबेरजी अपनी सत्तर योजन विस्तीर्ण वैश्रवणी पुरी में विराजते हैं। इनके पुत्र नल-कूबर और मणि-ग्रीव भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा नारदजी के शाप से मुक्त होकर इनके समीप स्थित रहते हैं। इनके अनुचर यक्ष निरन्तर इनकी सेवा करते हैं।

प्राचीन ग्रीक भी प्लूटो नाम से धनाधीश को मानते थे। पृथ्वी में जितना कोष है, सबके अधिपति कुबेरजी हैं। इनकी कृपा से ही मनुष्य को भू-गर्भ-स्थित निधि प्राप्त होती है। निधि-विद्या में 'निधि' सजीव मानी गई है, जो स्वतः स्थानान्तरित होती है। पुण्यात्मा योग्य शासक के समय में मणि-रत्नादि स्वतः प्रकट होते हैं। आज तो अधिकांश मणि, रत्न लुप्त हो गये हैं। स्वतः-प्रकाश कोई रत्न विश्व में नहीं है, क्योंकि आज का मानव उनको उपभोग्य मानने लगा है। यज्ञ-दान के अवशेष का उपभोग हो, यह प्रवृत्ति लुप्त हो चुकी है। कुबेर जी मनुष्य के अधिकार के अनुरूप कोष का प्रादुर्भाव या तिरोभाव कर देते हैं। भगवान् शंकर ने इन्हें अपना नित्य-सखा स्वीकार किया है। प्रत्येक यज्ञान्त में इन वैश्रवण राजाधिराज को पुष्पाञ्जलि दी जाती है।

कुबेर धन-पति हैं। जहाँ कहीं भी धन है, उसके ये स्वामी हैं। इनके नगर का नाम अलकापुरी है। ये एक आँख रखते हैं। एक बार भगवती उमा पर इनकी कु-दृष्टि गई, तो एक नेत्र जाता रहा। दूसरा नेत्र पीला हो गया। अतः ये एक आँखवाले पिंगली कहे जाते हैं। इनकी पीठ पर कूबड़ है। अस्त्र गदा है, वाहन नर है अर्थात् ये पालकी पर बैठकर चलते हैं।

रामायण के उत्तर काण्ड के अनुसार ब्रह्मा के मानस पुत्र पुलस्त्य हुये और इनके वैश्रवण नामक एक पुत्र हुए, जिनका दूसरा नाम कुबेर था। अपने पिता को छोड़कर ये अपने पितामह ब्रह्मा के पास चले गए और उनकी सेवा करने लगे। इससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने इन्हें अमरत्व प्रदान किया, साथ ही धन का स्वामी बनाकर लङ्का का अधिपति बना दिया। साथ ही पुष्पक विमान प्रदान किया।

पुलस्त्य ऋषि ने अपने शरीर से एक दूसरा पुत्र पैदा किया, जिसने अपने भाई कुबेर को बड़े क्रूर भाव से देखा। तब कुबेर ने अपने पिता को सन्तुष्ट करने के लिये तीन राक्षसियाँ भेंट कीं, जिनके नाम थे पुष्पोलट, मालिनी और रामा। पुष्पोलट से रावण और कुम्भ-कर्ण तथा मालिनी से विभीषण एवं रामा से खर और दूषण, सूर्पणखा उत्पन्न हुये। ये सभी सौतेले भाई कुबेर की सम्पत्ति को देखकर उनसे द्वेष करने लगे। रावण ने तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया। उनसे मनचाहा रूप धारण करने एवं सिर कटने पर उसके फिर जम जाने का वर प्राप्त किया। वर पाकर वह लंका आया और कुबेर को लंका से बाहर निकाल दिया। अन्त में कुबेर गन्धमादन पर्वत चले गये। कुबेर की पत्नी दानव मूर की कन्या की बेटी थी। उनके पुत्रों के नाम मणि-ग्रीव और नलकूबर थे। लड़की का नाम मीनाक्षी था।

बौद्ध ग्रन्थ 'दीर्घ-निकाय' की कथा के अनुसार कुबेर पूर्व-जन्म में ब्राह्मण थे। वे ईख के खेतों के स्वामी थे। एक कोल्हू की आय वे दान कर देते थे। इस प्रकार वह २० हजार वर्षों तक दान करते रहे, जिसके फल-स्वरूप इनका जन्म देवों के वंश में हुआ।

'शतपथ-ब्राह्मण' में कुबेर को राक्षस बताया गया है और उन्हें दुष्टों और चोरों का नेता कहा गया है। कुबेर यक्षों के नेता हैं। जैन, बौद्ध, ब्राह्मण, वेद-साहित्य में 'कुबेर' नाम से ही इनका उल्लेख है। ये उत्तर दिशा के दिक्-पाल हैं। इन्हें सोना निकालने की कला का भी मर्मज्ञ बताया जाता है। इनके निवास-स्थान अलकापुरी में, जो कैलास पर्वत पर बताया जाता है, उद्यान, झीलें एवं सुन्दर महल हैं। वहाँ वृक्षों पर पत्तियों के रूप में रत्न और फूलों के रूप में अति सुन्दर अप्सरायें लटकती रहती हैं, जो दिव्य दृष्टि-युक्त व्यक्ति को ही दिखाई देते हैं। यहीं से अलकनंदा निकली हैं।

कौटिल्य ने लिखा है कि कुबेर की मूर्ति खजाने में स्थापित की जानी चाहिये। कुबेर का निवास वट-वृक्ष कहा गया है। 'वाराह पुराण' के अनुसार कुबेर की पूजा कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन की जातो है। लेकिन आजकल दीपावली पर, धनतेरस के दिन इनकी पूजा की जाती है। कुबेर जी को प्रसन्न करने के लिये महा-मृत्युञ्जय का जप कम-से-कम दस हजार करना आवश्यक है। जैसा कि अनेक मन्त्रों से स्पष्ट है, कुबेर धन-धान्य और समृद्धि के ही देवता हैं। वैदिक साहित्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। यह मन्त्र तो सबने हो सुना होगा, जो याग के अन्त में आशीर्वाद के रूप में पढ़ा जाता है और प्रार्थना को जाती है कि पूर्व से पश्चिम समुद्र तक हमारा राष्ट्र हो—

'राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने, नमो वयं वैश्रवणाय कुर्म्महे।'

मन्त्र—ॐ यक्षाय कुबेराय वैश्रवणाय धन-धान्याधिपतये धन-धान्य-समृद्धिं मे देहि दापय स्वाहा।

विनियोग—ॐ अस्य मन्त्रस्य विश्रवा ऋषिः, वृहती छन्दः, कुबेरः देवता, सर्वेष्ट-सिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—विश्रवा-ऋषये नमः शिरसि, वृहती-छन्दसे नमः मुखे, कुबेर-देवतायै नमः हृदि। सर्वेष्ट-सिद्धये जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

षडङ्ग-न्यास—	**कर-न्यास**	**अङ्ग-न्यास**
ॐ यक्षाय	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ कुबेराय	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
ॐ वैश्रवणाय	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
ॐ धन-धान्याधिपतये	अनामिकाभ्यां हुं	कवचाय हुं
ॐ धन-धान्य-समृद्धिं मे	कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ॐ देहि दापय स्वाहा	कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

ध्यान—मनुज-बाह्य-विमान-स्थितम्, गरुड़-रत्न-निभं निधि-नायकम्।
शिव-सखं मुकुटादि-विभूषितम्, वर-गदे दधतं भजे तुन्दिलम्।

इस मन्त्र की सिद्धि हेतु एक लाख जप करे व दशांश तिल-हवन करे। पुरश्चरण कर चुकने पर किसी शिवालय में शिव-पूजनोपरान्त कुबेर का उपर्युक्त ध्यान कर मानसिक पूजन करके १,००० जप करने से धन-वृद्धि और व्यापार में लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। विल्व-मूल के नीचे बैठकर एक लाख जप करके, दशांश तिल से हवन करने पर विशेष धन-प्राप्ति होती है। गुरु, रवि, पुष्य नक्षत्र या सर्वार्थ-सिद्धि-योग के दिन यह अनुष्ठान प्रारम्भ किया जा सकता है। जप के लिये सर्वोत्तम समय प्रातः-काल है। शिव-पूजन बिल्व-पत्रादि से अवश्य करें।

दक्षिणाम्नाय श्रीभुवनेश्वरी-कवच

श्रीकृष्ण पिच्चुमणि अयङ्गार, श्रीरङ्गम् (तमिलनाडु)

फाल्गुन पूर्णिमा, २०४४ वि० मार्च १९८८ के 'चण्डी'—विशिष्ट अङ्क के रूप में "श्रीभुवनेश्वरी-स्तव-मञ्जरी" का प्रकाशन करके शाक्तों को प्रोत्साहित किया गया। एतदर्थ 'चण्डी' का सम्पादक-मण्डल धन्यवादार्ह है।

श्रीभुवनेश्वरी के 'त्रैलोक्य-मङ्गल-कवचम्' तथा 'त्रैलोक्य-मोहन-कवचम्' उक्त स्तव-मञ्जरी में दिये गये हैं। भगवती भुवनेश्वरी दक्षिणाम्नाय की सिद्धेश्वरी हैं। यहाँ साधकों के उपकारार्थ शची-पुरन्दर ऋषि से आराधिता सिद्ध भुवनेश्वरी का कवच दिया जा रहा है—

वज्रिणी पूर्वतो रक्षेत् आग्नेय्यां परमेश्वरी।
दण्डिनी दक्षिणे रक्षेत् नैरृत्यां खड्गिनी सदा॥
पश्चिमे पाश-हस्ता च, ध्वजस्था वायु-दिङ्-मुखे।
गदाधरी तथोदीच्यां, ऐशान्यां च महेश्वरी॥
ऊर्ध्व-देशे पद्मिनी मां, अधस्तात् पातु वैष्णवी।
एवं दश-दिशो रक्षेत्, सर्वदा भुवनेश्वरी॥

उक्त कवच का अर्थ स्पष्ट है। शैव, सौर, गाणपत, शाक्त, कौमार और वैष्णव तन्त्रों में रुद्र का स्थान ललाट में भौंहों के बीच माना गया है। रुद्र के स्थान पर कोई वाद-विवाद नहीं है। रुद्र के क्रोध को शान्त करके साधकों को सही मार्ग-दर्शन देने के लिए भुवनेश्वरी-मन्त्र की सिद्धि पाना आवश्यक है।

मनो-वेग वायु-वेग के साथ चलता है। सूर्य की नाड़ी एवं चन्द्रमा की नाड़ी का परीक्षण करने का अभ्यास हो जाने पर मन स्थिर होने लगता है। मन के स्थिर हो जाने पर साधक को 'कुम्भक' की सिद्धि हो जाती है। साथ-ही-साथ 'भुवनेश्वरी' के दिव्य दर्शन भी मिल जाते हैं। भुवनेश्वरी सदा 'युवती' के रूप में प्रसन्न-वदना होकर भक्तों को अपने अनुग्रह से आनन्दित करती हैं। द्वि-भुजा भुवनेश्वरी शीघ्र फल देती हैं। उनके वाम-हस्त में 'वज्र' और दक्षिण-हस्त में 'वर-मुद्रा' है। अतः ध्यान निम्न श्लोक से करना उपयुक्त रहेगा—

"ईश्वरीं नौमि युवतीं नानालङ्कार-भूषिताम्।
प्रसन्न-वदनाम्भोजां अप्सरो-गण-सेविताम्॥"

'चण्डी' के पाठक भ० श्रीभुवनेश्वरी के इस लघु कवच-स्तोत्र का पाठ करके आनन्द-लाभ करें।

श्रीललिता-विजयम्

['चण्डी' वर्ष ४७—वैशाख, २०४५–मई, १९८८ के पृष्ठ २१ के आगे]

पूज्य श्री १००८ श्री स्वामी अद्वयानन्द जी सरस्वती, श्री छाया-पीठं, त्रिचि (तमिलनाडु)

"परा-शक्ति ही सृष्टि करती हैं, विवेचना करती हैं और ज्ञान देती हैं। वही पुरुष, नारी, अवतार और सभी कुछ के रूप में प्रकट होती हैं। उनके बिना एक अणु तक गति नहीं कर सकता। हे देवो ! क्या तुम अपने कर्मों का फल निश्चय ही नहीं भोगोगे ? मनुष्य तो अपने वर्तमान कर्मों के फल अन्य जन्मों में भी भोग सकते हैं, किन्तु देवताओं को अपने शुभ-अशुभ कर्मों के फल इसी जन्म में भोगने पड़ते हैं।"

[अध्याय ६]

शिष्य—"गुरुदेव ! कृपया क्षमा करेंगे कि मैं कुछ प्रश्न करके आपकी कथा में हस्तक्षेप कर रहा हूँ। ब्रह्मदेव के इस कथन का क्या तात्पर्य है कि मनुष्य लोग अपने अच्छे-बुरे कर्मों के फल विभिन्न जन्मों में भोगते हैं किन्तु देवों को उसी जन्म में भोगना पड़ता है ?"

कर्मों का रहस्य

गुरुदेव—"जीवों का मानव-शरीर मिश्रित कर्मों से उत्पन्न होता है अर्थात् जब अत्यधिक पुण्य-दायक या अति पाप लगनेवाले कर्म नहीं होते, अपितु शुभ और अशुभ कर्म लगभग बराबर होते हैं, तब जीव को मानव शरीर प्राप्त होता है। यही कारण है कि मनुष्य असीम प्रसन्नता या अपार दुःख को सह नहीं पाते, उसके आघात से मर जाते हैं। ऐसी दशा में वे केवल पूर्व-जन्म के किए उन्हीं कर्मों का फल भोगते हैं, जिनके फलस्वरूप उन्हें इस जन्म में मानव शरीर मिला है। उन्हें इस जन्म के कर्मों का फल नहीं मिलता। इसी से प्रायः हम देखते हैं कि कुछ लोग करते तो हैं अनेक अच्छे कर्म किन्तु जीवन उनका कष्ट-मय ही रहता है, जब कि अन्य कुछ लोग बुरे कर्म करते हुए भी सुख-मय जीवन बिताते हैं। वास्तव में इस जन्म के किए गए अच्छे और बुरे कर्मों का फल अगले जन्मों में हा मिलता है। हाँ, यदि कोई अत्यधिक शुभ या अशुभ कर्म करते हैं, तो कभी-कभी ईश्वर उन्हें इसी जन्म में उन कर्मों का फल दे देते हैं।

"सीमा से अधिक किए गए पापों के फल का भोग कराने के लिए ही पशुओं से लेकर पौधों तक के जन्मों की व्यवस्था की गई है। पशुओं, पक्षियों, रेंगनेवाले जीवों, जल-जन्तुओं, पौधों आदि के जन्म अत्यधिक पाप और कुछ पुण्य के मिश्रित कर्म के फल-स्वरूप प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि ये जीव दुःखों का निवारण करने और सुख पाने का मार्ग नहीं पा सकते किन्तु अत्यधिक कष्ट को सहते हुए भी जीवित रहने की शक्ति उनमें होती है। वृक्ष और उनकी जाति के जीव बारम्बार काटे जाने और छिन्न-भिन्न किए जाने पर भी जीवित रहते हैं और पुनः विकसित हो जाते हैं। कुछ पशु महीनों समाधिस्थ रहते हैं। अत्यधिक कष्ट सहते हुए भी वे जीवित रहते हैं। ऐसे जीव बुद्धि-रहित होते हैं, जिन्हें न पापों का ज्ञान होता है और न उनसे बचने का उपाय उन्हें सूझता है। पुण्य कर्मों का भी उन्हें ज्ञान नहीं होता और वे पुण्य कमा नहीं पाते। ऐसे जीवों के कर्मों को देवता अच्छा या बुरा नहीं मानते। इस प्रकार ये जीव केवल अपने पिछले मानव जन्म के कर्मों के फलों का भोग मात्र करते हैं। न वे पुण्य कमाते हैं, न पाप।

"यदि मनुष्य ऐसे असीम पाप करता है, जिनका प्रभाव पशु से पौधे तक किसी जीव का शरीर सहन नहीं कर सकता, तो उसे 'यातना-शरीर' प्राप्त होता है, जो नरक में जाता है और वहाँ क्रमानुसार कष्ट-भोग करता है।

"इसी प्रकार असीम पुण्य कर्मों के फल-भोग के लिए मनुष्य को 'देव-शरीर' प्राप्त होता है। यही कारण है कि देवता कितना भी सुख या आनन्द का भोग करें, उनके 'देव-शरीर' को कोई हानि नहीं पहुँचती, वह किञ्चित् भी निर्बल नहीं होता किन्तु पुण्य और पाप की भावना से वे रहित नहीं होते। मनुष्य की अपेक्षा उनकी बुद्धि अधिक तीक्ष्ण होती है। अतः अपने अच्छे और बुरे कर्मों से वे भी प्रभावित होते हैं किन्तु 'देव-शरीर' केवल कर्म-फल के भोग के लिए ही बना है, उसके द्वारा पुण्य या पाप अर्जित नहीं हो सकता। यही कारण है कि देवता ऐसे पुण्य या पाप-कर्म एकत्र नहीं कर सकते, जिनका फल अगले जन्मों में उन्हें भोगना पड़े। उन्हें 'देव-शरीर' द्वारा किए गए अच्छे और बुरे कर्मों का फल पूर्णतया उसी 'देव-शरीर' के द्वारा ही भोगना पड़ता है।"

शिष्य—हे ज्ञान-पूत ! आज मुझे कर्मों का रहस्य ज्ञात हुआ। अब कृपा करके बतायें कि ब्रह्म-देव ने आगे क्या कहा ?

गुरुदेव ने पुनः ब्रह्मदेव की वार्ता का विवरण देना प्रारम्भ किया।

महा-परा-शक्ति श्रीललिता-ब्रह्म की कृपा का महत्त्व

ब्रह्मदेव ने आगे कहा—"जब कभी हे देवों ! तुम लोग पराम्बा की शक्ति और कृपा से असुरों पर विजय पा लेते हो, तब तुम इस विचार से गर्वित हो उठते हो कि तुमने स्वयं उन्हें जीता है। तुम कृतघ्न लोग यह अनुभव नहीं करते कि तुम्हारी विजय महा-परा-शक्ति श्रीललिता-ब्रह्म की कृपा के ही कारण हुई और तुम उनकी स्तुति करना भूल जाते हो। यह कितना बड़ा पाप है !

"एक बार तुम लोग इसी प्रकार गलत ढंग से अपनी विजय मानकर गर्वोन्मत्त हो उठे थे और आपस में डींग मारने लगे थे कि 'मैंने ही विजय प्राप्त की है, यह मैं हूँ—जिसने असुरों को जीता है', तब महा-परा-शक्ति तुम्हारे गर्व को मिटाने के लिए एक यक्ष के रूप में तुम लोगों के समक्ष प्रकट हुई थीं। उन्हें देखकर तुम लोग चकरा गए और पहले अग्नि को, फिर वायु को यह पता लगाने को भेजा कि वह यक्ष कौन है किन्तु वे दोनों ही अपनी सारी शक्ति लगाकर भी उसका परिचय नहीं पा सके और अपमानित होकर लौट आये। उनका गर्व चूर-चूर हो गया। तब तुम लोगों ने इन्द्र को भेजा। वे भी उसका पता नहीं पा सके और यक्ष अन्तर्ध्यान हो गया। इन्द्र का भी गर्व मिट गया और उन्होंने भगवती उमा का ध्यान किया। तब आकाश में पार्वती प्रकट हुईं और उन्होंने घोषित किया कि 'तुम लोगों के अज्ञान और गर्व को मिटाने के लिए वही महा-परा-शक्ति-ब्रह्म यक्ष के रूप में तुम्हारे समक्ष आविर्भूत हुई थीं, जो तुम्हें सभी शक्तियाँ प्रदान करती हैं।' इस घटना के बाद भी तुम लोग इस सत्य को भूल जाते हो और पुनः अभिमान करने लगते हो।

"एक बार इन्द्र ने ददाही के पुत्र और अपने गुरु विश्वरूप के तीन शिर काट डाले और उन्हें मार डाला। गुरु की हत्या करना कितना बड़ा पाप है ! पुत्र-शोक से सन्तप्त ददाही ने इन्द्र को श्री-हीन हो कर अति कष्ट भोगने का शाप दे दिया।

'एक अन्य अवसर पर तीनों लोकों के स्वामी होने के गर्व में ऐरावत पर बैठे इन्द्र अमरावती में एक जलूस में जा रहे थे। कैलास पर्वत देखकर उन्होंने सोचा कि 'शिव इस निर्जीव रौप्य पर्वत पर बैठते हैं। मैं, तीनों लोकों का स्वामी, इस सुन्दर श्वेत दिव्य ऐरावत पर विराजमान हूँ, जो रौप्य पर्वत से

कहीं अधिक श्रेष्ठ है। यह ऐरावत, जहाँ भी मैं चाहूँ, पहुँचने में सक्षम है, जब कि कैलास पर्वत जड़ है— अपने स्थान से हिल भी नहीं सकता। मैं—देवों का ईश्वर, शिव से श्रेष्ठ हूँ।' ऐसा सोचते हुए वे अकेले गर्वोन्मत्त होकर चले जा रहे थे, भगवान् शिव को यह बात मालूम हो गई और उन्होंने दुर्वासा को भेज दिया। दुर्वासा चले, तो मार्ग में उन्हें एक विद्याधरी कन्या मिली, जो अनेक वर्षों से देवी की पूजा कर रही थी। उसने बड़ी श्रद्धा के साथ उन्हें एक पुष्प-माला भेंट की। दुर्वासा ने उसे उसका इच्छित वरदान दिया और बड़ी प्रसन्नता से उस माला को अपने शिर पर धारण कर लिया। इन्द्र को ऐरावत पर बैठे बड़ी शान से जलूस में जाते देखकर दुर्वासा ने सोचा कि पराम्बिका के प्रसाद-रूप यह पुष्पमाला इन्द्र के पास होनी चाहिए, उसे उन्हें भेंट कर दिया। इन्द्र ने कोई ध्यान दिए बिना माला ले ली और उसे हाथी के शिर पर रख दिया। हाथी ने उसे झटक कर नीचे गिरा दिया और अपने पैरों से कुचल डाला। यह देखकर ऋषि दुर्वासा अत्यन्त कुपित हो उठे और उन्होंने इन्द्र को दारुण शाप दिया कि 'जगन्माता की यह पुष्प-माला देवों के लिए भी दुर्लभ है। इसे अपने शिर पर धारण करने के स्थान पर तुमने इसका अपमान किया है! अतः तुम्हारा तीनों लोकों का साम्राज्य श्री-हीन हो जायगा।'

"शाप के फल-स्वरूप देव-लोक को दिव्यता और ईश्वरता देनेवाली सभी वस्तुएँ लुप्त हो गईं और जाकर सागर में जाकर छिप गईं। इस प्रकार सङ्कट में पड़ने पर तुम सब देवों ने महा-विष्णु की शरण ली, जिस पर उन्होंने समुद्र-मन्थन द्वारा उससे पुनः लक्ष्मी, चन्द्र, श्वेत ऐरावत गज, श्वेत उच्चै-श्रवा अश्व, कल्पवृक्ष और अमृत को प्राप्त किया।

"तुम देवताओं की बात और क्या कहें! हम लोग अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी समय-समय पर माया-ग्रस्त होकर अभिमान में फँसते रहे हैं और बाद में कष्ट उठाते रहे हैं। केवल अहङ्कार या गर्व ही सभी बुराइयों की जड़ है। सर्व-व्यापिनी एवं सर्व-भूता परब्रह्म श्रीललिता-परा-शक्ति ने अपने में से तीव्र शक्ति—'माया' को उत्पन्न किया है। यही माया समस्त लोकों, समस्त वस्तुओं और हमारे समस्त शरीरों का रूप धारण करती है। इन सबमें जो शक्ति है, वह वस्तुतः उसी महा-परा-शक्ति का रूपान्तर मात्र है। वही सब कुछ करती है। अतः यह कहना कि 'मैं करता हूँ, तुम करते हो'—मात्र कल्पना भर है। जो उस पराम्बा की उपासना भक्ति-पूर्वक करते हैं, वे सर्व-शक्तिमान् हो जाते हैं और सब कुछ कर सकते हैं।

"एक बार मैं (ब्रह्मा) और भगवान् विष्णु ने उन पराम्बा की उपासना की और हमें सृष्टि करने तथा उसका पालन करने की शक्ति प्राप्त हुई, जिसके अनुसार हम अपने कर्तव्य का निर्वाह सुचारु रूप से करने लगे। तुम लोग और पृथ्वी के भक्त हमारी स्तुति करने लगे, जिससे हमें अभिमान होने लगा और धीरे-धीरे हम पराम्बा को भूलते गए। महेश्वर की आवरण-शक्ति ने हमारी बुद्धि पर पर्दा डाल दिया और हम अपने से ऊपर की अनेक शक्तियों के अस्तित्व की बात भूल गए। हम गर्वोन्मत्त हो उठे। हममें से प्रत्येक अपने को दूसरे से श्रेष्ठ समझने लगा और एक दूसरे के विरुद्ध हम लड़ने लगे। पराम्बा को भुला देने और अहङ्कारी हो जाने से हमारी शक्तियाँ लुप्त होती गईं। हम दोनों संघर्ष-कर्ताओं के मध्य महेश्वर एक विशाल ऊँचे पर्वताकार पञ्चाग्नि-स्वरूप ॐकार के रूप में खड़े हो गए।

"हम दोनों ने परस्पर लड़ना बन्दकर इस बात की बाजी लगाई कि मैं (ब्रह्मा) इस पर्वत के शिखर पर पहुँचूँ और विष्णु उसके मूल को खोज निकालें। जो सफल होगा, वह असफल होनेवाले से श्रेष्ठ माना जायगा। यदि दोनों सफल होते हैं, तो हम पुनः लड़ेंगे और जो संघर्ष में विजयी होगा, वह श्रेष्ठ स्वीकार किया जायगा। यह निर्णय हम दोनों ने परस्पर ही किया। मैंने हंस का रूप धारण किया

और उस पर्वत के शिखर पर पहुँचने के लिए उड़ चला। विष्णु ने शूकर का रूप धारण किया और पृथ्वी को छेदते हुए उसके मूल की खोज में नीचे की ओर गए। इस प्रकार सहस्रों वर्षों तक हम प्रयास करते रहे किन्तु न मैं शिखर पर पहुँच पाया, न विष्णु मूल को खोज पाए। हमारा अहङ्कार समाप्त हो गया।

"हम दोनों उस पर्वत का रहस्य जानने के लिए परा‌म्बा की स्तुति करने लगे। तुरन्त ही उस पर्वत से महेश्वर निकल आये और यह भेद बताया कि 'परा-शक्ति ललिताम्बिका ही प्रत्येक शरीर में हैं, और वही सारी शक्ति का प्रदर्शन करती हैं। अतः किसी को अहङ्कार नहीं करना चाहिए अपितु पराम्बा की उपासना करते हुए मोक्ष को प्राप्त करना चाहिए'। यह कहकर वे अन्तर्ध्यान हो गए।"

आज भी 'तिरुवन्नर' और 'तिरुइंगोमलाई' उस अग्नि-पर्वत के स्मारक विद्यमान हैं। [क्रमशः]

सूचना—१ 'शक्ति-पीठ काशी' विशेषाङ्क के आगे के पृष्ठ

'चण्डी' वर्ष ४७, अङ्क ६ (सितम्बर ८८) द्वारा 'शक्ति-पीठ काशी' विशेषाङ्क प्रारम्भ हुआ है। इस विशेषाङ्क में 'चण्डी' के विद्वान् लेखक/साधक 'कुल-ज्योति' स्व० पं० कन्हैयालाल ज्योतिषी के लिखे और 'चण्डी' के प्रारम्भिक वर्षों में प्रकाशित उद्‌बोधक निबन्ध संशोधित और सम्पादित रूप में पुनः प्रस्तुत हो रहे हैं। अङ्क ६ में इस विशेषाङ्क के २४ पृष्ठ दिए गये थे। प्रस्तुत अङ्क ७ में उसके आगे के ८ पृष्ठ—२५ से ३२ दिए जा रहे हैं। 'चण्डी' के आगामी अङ्कों में इसी प्रकार ८ या १६ पृष्ठ इस दुर्लभ विशेषाङ्क के दिए जायेंगे। इसकी पृष्ठ-संख्या अलग है।

२ 'चण्डी' वर्ष ४७ का आगामी अङ्क ८

'चण्डी' वर्ष ४७ का यह अङ्क ७ (अक्टूबर ८८) आपकी सेवा में है। इसके पूर्व सितम्बर ८८ तक के कुल ६ अङ्क वी० पी० द्वारा आपको मिल चुके हैं।

जिन बन्धुओं ने 'चण्डी' वर्ष ४७ हेतु रजिस्ट्री सदस्यता-शुल्क १०० रु० या सामान्य शुल्क ४०-०० रु० भेजे थे, उनकी सेवा में अप्रैल से सितम्बर तक के कुल ६ अङ्क डाक-व्यय ३-०० रु० की वी० पी द्वारा भेजे गए थे। जिन्होंने वर्ष ४७ हेतु कोई शुल्क नहीं भेजा था, उनकी सेवा में उक्त सभी अङ्क सामान्य वार्षिक शुल्क ४०-००+ डाक-व्यय ५-००=४५-०० रु० की वी० पी० द्वारा भेजे गये थे, जिससे सभी अङ्क सुरक्षित पहुँच जायँ। इस व्यवस्था में यदि किसी बन्धु के साथ त्रुटि हुई हो, तो कृपया सूचित करेंगे। हम उसे सुधार लेंगे।

'चण्डी' वर्ष ४७ के अङ्क १ और ३ की पृष्ठ-संख्या परिस्थिति-वश कम रही। अतः अङ्क ७ और ८ में अधिक पृष्ठ दिये गये हैं। अङ्क ८ सभी पाठकों की सेवा में २५ नवम्बर को भेजा जायेगा, जो दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक सबको मिल जायेगा। यदि प्राप्त न हो, तो कृपया हमें सूचित करेंगे।

३ प्रयाग, कुम्भ-मेला सं० २०४५ वि०—सन् १९८९ ई०

मकर-संक्रान्ति २०४५ वि०—१४ जनवरी, १९८९ से प्रयाग का विराट् 'कुम्भ-मेला' प्रारम्भ होगा। इस कुम्भ-मेले में 'अखिल भारतीय शाक्त-सम्मेलन' द्वारा विविध आयोजन सम्पन्न होंगे।

जो बन्धु मेले में आना चाहते हों, वे कृपया हमें तुरन्त लिखने की कृपा करेंगे। पहले से सूचना प्राप्त होने पर ही हमारे द्वारा निवास आदि आवश्यक सुविधा सुलभ हो सकेगी।

अतः सभी इच्छुक बन्धुओं से विनम्र निवेदन है कि इस सम्बन्ध में पूरी सूचना शीघ्र-से-शीघ्र हमारे पास भेजने की कृपा करेंगे। यथा—१ कितने व्यक्ति मेले में आयेंगे? २ किस तारीख को आयेंगे व कितने दिन मेले में रहना चाहेंगे? ३ निवास की उनकी अपनी व्यवस्था है या नहीं? आदि।

जिस व्यक्ति को शक्ति-साधना करनी हो, उसे संसार में संसारी और ईश्वर के सामने उतने काल के लिए सर्वथा छल-हीन अवश्य रहना चाहिए, जब तक वह प्रयोग करता हो। जिस पर प्रयोग करना है, वह भी छल-हीन है, इसका भी निश्चय भले प्रकार कर लेना चाहिए, अन्यथा मां-बहन कोई भी स्त्री हो, कलि-युग के कारण धोखा होना सहज बात है।

आरम्भ में प्रयोक्ता की 'भूत-शुद्धि' की आवश्यकता नहीं है, किन्तु चित्त-शुद्धि की विशेष रूप से आवश्यकता होती है। प्रयोक्ता को चाहिए कि एकान्त स्थल में मृदु आसन पर बैठकर साधारण विधि से सामान्यार्घ्य और विशेषार्घ्य दोनों की स्थापना करे और ऋष्यादि तथा षडङ्ग-न्यास कर, ध्यान धर, इष्ट-देवी के मन्त्र का अष्टोत्तर-शत जप करे। उस समय हृदय से प्रार्थना करता रहे कि हमको प्रत्यक्ष वाणी और चेष्टा के द्वारा उपदेश मिले।

यदि अपनी माँ सौभाग्य-सम्पन्ना हों, तो उन्हीं को दुर्गा-स्वरूपा मानकर मृदु आस्तरण पर बैठावे और आवाहन-स्थापन मुद्राओं का प्रदर्शन कर गो-मुद्रा से अमृतीकरण करे। फिर पाद्य-अर्घ्य, आचमन देकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूलादि से न्यूनाधिक विस्तार-रहित मन्त्र-पूर्वक पूजा करनी चाहिए। पुनः मूल-मन्त्र से अष्टोत्तर-शत पुष्प या अक्षत देवता पर मूल-मन्त्र से आवाहन का भाव रखते हुए एक-एक पुष्प या अक्षत चढ़ाना चाहिए और चरणों पर मस्तक रखकर अष्टोत्तर-शत मूल-मन्त्र जपते हुए जिस बात की इच्छा हो, उसके लिए मानसिक प्रार्थना करनी चाहिए। तदनन्तर विशेषार्घ्य से 'इतः पूर्वं' इत्यादि मन्त्र से आत्म-समर्पण करना चाहिए। देवता के विसर्जन के बाद उस समय जो आशीर्वाद देवता दे, उस पर विचार करना चाहिए।

इस प्रकार का पूजन पञ्चामृत या फलों के रस के साथ हो सके, तो अतीव उत्तम होगा। इस पूजन में अधिक-से-अधिक ४९ दिन पर्याप्त हैं। साधक को जो अभीष्ट प्राप्त करना है, उसका उत्तर मिलेगा। चित्त में शान्ति और घर में समृद्धि होने लगेगी।

यदि माता न हों, तो अपनी अर्द्धाङ्गिनी पर पादान्त नमस्कार के स्थान पर द्राविणी या योनि-मुद्रा बाँध कर जप करना चाहिए। अन्य स्त्रियों पर यह प्रयोग करना ठीक न होगा। यदि शुद्ध हृदय है, तो कोई आपत्ति भी नहीं। अपनी कन्या या अन्य जाति-विशेष की कन्या का पूजन कर सकते हैं। ऐसा पूजन संसार के कल्याण के लिए या आत्म-कल्याण के लिए करना अतीव श्रेयस्कर है।

इस प्रयोग में सप्तशती के निम्न मन्त्रों से प्रयोग किया जाय, तो श्रेय शीघ्रता से मिलेगा। श्लोकों का सन्दर्भ 'विशुद्ध चण्डी' (श्री दुर्गा सप्तशती), के अनुसार दिया गया है—

१ 'संस्मृता संस्मृता'—अध्याय ४/३५, अर्द्ध०, २ 'तस्य वित्तर्द्धि-विभवैः' अ० ४/३६ (यहाँ 'तस्य' के स्थान पर 'अमुकस्य'), ३ 'तयास्माकं—अ० ५/६, ४ 'या देवी० लक्ष्मी-रूपेण०' ५/५६, ५ 'या देवी० मातृ-रूपेण०' ५/७१, ६ 'इन्द्रियाणामधिष्ठात्री०' ५/७७, ७ 'सर्व-मङ्गल-माङ्गल्ये' ११/१०, ८ 'सर्व-स्वरूपे सर्वेशे०' ११/२४, ९ 'ततो देव-गणाः सर्वे०' १०/३०।

उक्त मन्त्रों से या इसी सप्तशती-स्तोत्र के अन्य काम्य प्रयोग-मन्त्रों से साधन करना चाहिए। अन्य प्रकर के प्रयोगों से यह प्रयोग सहस्रों बार का आजमाया हुआ है। सिद्धि-दायक, निष्कीलित, शाप-रहित, 'ददाति आत्मार्पणं प्रति-गृह्णाति'—आशीर्वाद-ग्रहण से ही आपको हमारी तन्त्र-विद्या का यह छोटा-सा प्रयाग सिद्धि प्रदान करेगा और शक्ति के उपार्जन करने के मार्गों का उपदेश भी करेगा।

'मातृ'-शब्द ही निर्माण-कारक है। पुरुषान्तर से सृष्टि को प्रकृति कही जाती है। प्रकृति के नित्यानित्य होते हुए भी स्थिरीकरण की इच्छा प्राणी मात्र में व्याप्त है, परन्तु उस शक्ति से उसका

सम्बन्ध नहीं है, जो राज्य, यौवन, शरीर, प्राण के इच्छानुकूल आदान-प्रदान की क्रिया करती है।

यदु ने ययाति को यौवन-दान दिया था। वह हठ-योगी या साधु-संन्यासी नहीं था, परन्तु यह शक्ति उसमें थी। उस समय ऐसी बातों का उल्लेख गिनती में नगण्य-जैसा था और आज असम्भव-सा माना जाता है। वैष्णव लोगों में चैतन्य-सम्प्रदाय में इसी प्रकार का साधन था। चरित्र-दोष से उसका लोप हो गया।

तामस या राजस, या सात्विक--कोई भी शक्ति क्यों न हो, साधक बन, साधन कर, 'राम' न सही, 'राम-गुलाम' ही बनो। लँगोटा बाँध अखाड़े में डट जाओ, मेहनत और बुद्धि से किसी प्रकार का साधन करो। 'शक्ति' का साधन ही 'साधना' है।

इस प्रयोग में दूसरों को दुःख देने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए, नहीं तो तुरन्त दो-एक प्रयोगों के बाद शाप मिलेगा, फिर श्रेय-प्राप्ति का मार्ग मिलना दुष्कर हो जायगा।

यह संसार परमात्मा का है। परमात्मा अपने हाथ से इसे मटियामेट नहीं करता। मनष्यों के कर्मों से ही ऐसा होने लगता है। मनुष्य हिंसक पशु जीवों की अपेक्षा अहिंसक होते हुए भी छल-प्रपञ्च-स्वाधिकारोन्मतता के कारण भयङ्कर बन जाता है। शक्ति प्राप्त कर और भी भयावह हो जाता है। योरप में व्योम-यान, भयङ्कर गैस आदि के दुरुपयोग इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

भयङ्कर पदार्थों से बचने के लिए आपको उपर्युक्त उपाय ही काम में लाना चाहिए। साधना में चित्त की चंचलता, व्यग्रता, क्रोध, लोभ—सभी को उतनी देर तक दूर रखना होगा। तब आपकी विषम समस्या दूर होने लगेगी, लाभ दिखाई देने लगेगा।

कैकेयी की इच्छा ने ही रावण को शक्ति-शाली बनाया और उसी के कारण 'राम' का नाम चरित्र सुधारने को संसार में आज तक लिया जाता है। शक्ति के साधकों में तन्त्र-ग्रन्थों में भगवान् श्रीकृष्ण का नाम सर्वाग्र-गण्य है। उनको बाल्य-काल से ही इसका अभ्यास करना पड़ा था। द्वारका-पुरी में भी दुर्गा के मन्दिर के होने का इतिहास है।

शास्त्र बलवान शूर मनुष्य की सदा से प्रशंसा करता आया है। आप भी प्रशंसनीय कार्यों के लिए तत्पर होइए। जब माता में शक्ति का आविर्भाव होगा, आप अवश्य गणेश होंगे, दूसरों का भय छुड़ाने के लिए भैरव होंगे, लक्ष्मी-पति नारायण होंगे, संसार के श्रेय का स्वयं कारण बनेंगे। किसी ने कहा है—

एषा ब्रह्म-कला लोके ज्ञानिनामपि दुर्लभा। एतां न भजते यो वै तं धिगस्तु पुनः पुनः ॥

अर्थात् यह शक्ति संसार में 'ब्रह्म की कला' है, जो ज्ञानियों के लिए भी दुर्लभ है। जो इसकी उपासना नहीं करता, उसे बारम्बार धिक्कार है।

चित्त कहीं, कर्म कहीं, ज्ञान कहीं—ऐसे व्यक्ति तन्मय होकर साधना नहीं कर सकते और वैसी साधना से फल भी नहीं मिलता। यद्यपि गीता में कहा है कि 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन', तथापि फल तो मिलता ही है।

आप विद्याध्ययन कर विद्वान्, व्यापार कर धनी, औषधि-सेवन से रोग-रहित होते हैं, तो क्या शक्ति-साधन से आप शक्ति-वान् न होंगे? आपका उपार्जित पुण्य पुत्र-पौत्र भोगेंगे, राजा अनरण्य की तरह कह सकेंगे कि मेरी २१ वीं पीढ़ी में 'राम' होगा और तुझसे बदला लेगा। भला इतनी भी शक्ति क्या थोड़ी है?

शाक्तों का प्रधान धन

(‘चण्डी’ वर्ष १ : १९९९ वि०—सन् १९४२ ई० : संख्या १०)

‘शक्ति-साधन’ शाक्तों का प्रधान धन है। यह साधन रात्रि में ही करना चाहिए, ऐसी तन्त्रों की आज्ञा है। क्वचित् शास्त्रज्ञ इस साधन को सात्विक और कोई-कोई राजस या तामस साधन व्यक्त कर इसे दूषित भी कहते हैं, पर तन्त्र तीनों प्रक्रियाओं से साधन करना बताता है।

प्रधान शङ्कर, तमो-गुण की अधिष्ठात्री काली, स्थान श्मशान, सह-वासी श्वान-शृगाल, काल-रात्रि, तिथि अष्टमी-चतुर्दशी-अमा, वार मङ्गल-शनि, मुहूर्त अर्ध-रात्रि है। इस साधन का फल असाध्य पदार्थ को सिद्ध करना, जैसे—‘अग्नि-स्तम्भं जल-स्तम्भं विद्युत्-स्तम्भं तथैव च।’ जो अशक्य है, उसी को शक्य करना—‘ब्रह्मादीनां च मारणं’ है।

इसका प्रधान साधक चण्ड नामक असुर हुआ है, जिसके लिए काली का प्रादुर्भाव हुआ। काली का स्वरूप ‘चण्डी’ में यह बताया है—

काली कराल-वदना विनिष्क्रान्ताऽसि-पाशिनी।
विचित्र-खट्वाङ्ग-धरा नर-माला-विभूषणा॥
द्वीपि-चर्म-परीधाना शुष्क-मांसाति-भैरवा।

कैसा विचित्र, भयङ्कर रूप और विचित्र आभूषण हैं! ऐसी मूर्ति के सम्मुख युद्ध-कौशल करना वीरों ही का काम है। तोप के गोले के सामने साधारण मनुष्य ठहर नहीं सकता, ठहरेगा तो वीर ही ठहरेगा। असुर ने अग्र साधन किया। कैसी भयङ्कर मूर्ति को युद्ध के लिए आह्वान किया! यही चण्डी का ही काम था। देव-गण भी भय-विह्वल हो पृष्ठ-साधक हो जय-शब्द से सम्वर्धन करने लगे। वह वीर युद्ध से हटा नहीं। उसके मुण्ड ने महा-माया का वाम हस्त सदा के लिए सुशोभित किया। वीरिणी ने उसकी वीरता ही पर मुग्ध हो उसे हस्त में धारण कर अट्टहास किया। युगान्तरित वीरों की मुण्डों की माला में शायद धारण करने के लिए हो, जिससे अनन्त सृष्टि में यह वीर कहीं भूल न जाय। ऐसे स्वरूप के साधन के लिए चण्डादि असुरों ने कैसा तमो-गुणी तप किया होगा, यह विचार करने की बात है।

दूसरा वीर निकुम्भिकालय का पुजारी रावण था, जिसकी कीर्ति कोटि-कोटि ग्रन्थों में विस्तृत है, किसी भी प्रकार न्यूनता को ग्रहण नहीं करती है। इसी वीर के लिए राम-लक्ष्मण ने पूर्ण सात्विक रूप से ऋषियों से भी बढ़कर चौदह वर्ष कन्द-मूल का आहार कर इन्द्रिय-संयम को पालते हुए असाधारण बालि से छल कर, सीता के अपहरण या वानरों की सहायता या युग-धर्म का कुछ भी हो, लांछन भी सहन कर पदाति होकर रावण के सम्मुख साक्षात् मर्यादावतार धारण कर युद्ध किया। ऋषि-गण तो व्याज में ही तर गए।

तमो-गुण की उपासना यदि वीर-वर रावण ने न की होती, तो आज राम का नाम इतना व्याप्त न होता, लङ्का श्मशान-भूमि न होती, न हनुमान को इतना श्रम ही करना पड़ता—‘इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति’—यह वाक्य चण्डी के मुख से भी न निकलता। वर-लोलुप देवता भी किससे वराभय पाते?

इससे ज्ञात होता है कि सत्व का अधिष्ठान तमो-गुण के बिना हो नहीं सकता। इसी तमो-गुणी काली का अपर नाम 'क्षुधा' संसार को तृप्त और पीड़ित किया करती है। बच्चा पैदा होते ही रोने लगता है। क्षुधा न होने से जीवन में संशय और उसकी अधिकता होने से हिंसक, चोर, सूम, लालची, कारीगर, बुद्धिमान् प्रभृति सभी की दशाएँ प्राप्त होती हैं--तृष्णा बढ़ जाती है, मृत्यु भी भूल जाती है, परमात्मा का स्मरण तो हरि जानें, हम तो भैया, माला भी इसी के लिए जपते हैं। जितना भी श्रम बादशाह से लेकर सामान्य जन करते हैं, 'क्षुधा' के लिए अपना प्यारा सिर तलवार की भेंट कर देते हैं। सम्पूर्ण वेदान्त का गुड़ गीला हो जाता है, यहाँ तक कि छोटा बच्चा भी छली हो जाता है।

'क्षुधा' के साथ ही 'निद्रा' भी काली ही का नाम है। भूखा, नङ्गा, रोगी, शोकी—सभी घूम-घाम कर इसकी गोद में सोकर सुखी होते हैं। भला आप इस काली की उपासना नहीं करते, तो हर समय क्या किया करते हैं? बुद्धि दूसरों को उठाने में लगी रहकर जैसा-तैसा कार्य क्षण-क्षण में कर क्षुधा से तृप्ति और सुख से निद्रा का लाभ करती है, इसी के लिए या परमात्मा के लिए? परन्तु इसमें भी अन्तर है।

पहले के लोग दूसरों को किसी भी मिस से तृप्त कर आत्मा को तृप्त करते थे। वह भी 'काली' ही थी। आज दूसरों के गले घोंट कर तोप के गोलों से उत्तम बसे-बसाए शहर-ग्रामों में चहल-पहल करते हुए राज्य-श्री को भोगतेहुओं को मटिया-मेट करके आप क्षुधा को तृप्त कर निद्रा को प्राप्त करते हो। यह भी 'काली' ही है।

राम, युधिष्ठिर, अशोक, औरङ्गजेब—सभी के समय सभी मजहबवाले इसी की उपासना करते आए हैं और करते रहेंगे। जिसके राज्य में भयङ्करता हो गई, काली ने भी काली रोशनाई से उसे लिख लिया और श्मशान-भूमि में धीरे-धीरे खींचने लगी। ऐसी काली-शक्ति की साधना करना क्या साधना नहीं है? तो क्या समग्र संसार जब धन-बल-बुद्धि-पराक्रम खोकर सदा के लिए सो जाय, संसार में श्मशान हो जाय, क्षुधा-पिपासा सभी से निवृत्ति हो जाय, ऐसी उपासना की चित्त-वृत्ति है?

काली के ध्यान में बहुत से तत्त्व हैं। युद्धान्त में श्मशान के सिवा कुछ रहता नहीं—लोहा-सोना, राजा-फकीर सभी एक ही घाट उतर जाते हैं, देश-के-देश बर्बाद हो जाते हैं, वहाँ काली अट्टहास कर नृत्य करती है और रुधिर तथा नर-मांस से अपनी क्षुधा बुझाती है। बुद्धिमान् राजा-प्रजा, मन्त्री-पण्डित ऐसी काली का नृत्य रोकें, तो वह लक्ष्मी होकर समस्त संसार को आनन्द के सागर में झकझोर देती है। विभूति, उन्नति, कान्ति, सृष्टि—सभी बढ़ने लगती है।

जहाँ काली प्रकृति होगी, वहीं पितृ-भूमि हिंसा, दारिद्र्य, जयविष्णुत्व, आर्त इत्यादि पैदा होंगे। अतएव क्षुधा और निद्रा की, जो प्रधान सुख के कारण हैं, लक्षण-युक्त काली की उपासना करिए, जिससे वर और अभय प्राप्त होते हैं। उसी से याचना करनी चाहिए। इससे सदिच्छा, ज्ञान, क्रिया प्रभृति उत्पन्न होकर संसार में सरस्वती की नदी बह उठेगी। संसार में काली ही 'आद्या' है, बादशाह और फकीर दोनों को वह पैदा करती है।

बादशाह संसार को संयम से लक्ष्मी का उपासक बनाता है और महात्मा उसको मुख्य मार्ग बताकर उसकी कृति को अमर करता है। दरिद्र कुछ भी नहीं कर सकता क्योंकि उसके पास क्रोध, मोह, पाखण्ड, अशान्ति आकर उससे मित्रता करते हैं और दरिद्र कोई तीसरा व्यक्ति नहीं, वही बादशाह ही है। जब वह लक्षणवती लक्ष्मी को छोड़ता है, तभी काली श्मशानाधिष्ठात्री का आविर्भाव हो जाता

है और सरस्वती धीरे-धीरे गायब हो जाती है। कलह का राज्य हो जाता है। असन्तोष ढिंढोरा पीटता है, क्षुधा प्रबल हो उठती है, सर्वत्र संहार होने लगता है। ऐसी काली की उपासना उचित नहीं।

महात्मा गुरु की उपासना करनी चाहिए, उससे मन्त्र लेकर काली को लक्ष्मी कर डालना अच्छा होगा। ऐसी शक्ति की उपासना जिस समय होने लगेगी, वेद-वाक्य उसी रात्रि में समय को पलट देगा—

'यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं, यत् सुप्तस्य यथैवेति।'

अर्थात् सोते से उठते हुए आप अपने भाग्य का सूर्य उदित देखेंगे, सर्वत्र पुष्प-वृष्टि और 'जय'—शब्द के नाद सुनेंगे, क्षुधा-निद्रा संयमित होकर आपको सुखी करेंगी, सभी मित्र-रूप से व्यवहार करेंगे, आप शक्तिवान् होंगे।

आपको शाक्त बनना चाहिए क्योंकि आप सदा से उपासना उसी की करते आए हैं, आगे भी करेंगे। क्यों चूकते हैं? 'शक्ति-साधन' इसी का नाम है। आप दूसरों की शक्ति प्रेम से खींच लेंगे, तब भी कोई छली न कहेगा, तो क्या कहेगा?

साधक! यदि आप ऐसी शक्ति का साधन करेंगे, तो अपने आप दूसरे रंग की काली का दर्शन करना होगा। कृष्ण का वाक्य है—

'प्रकृतिस्त्वां नियोक्षति।'

जब एक राजा दूसरे को घेरे में डाल देता है, तो ऐसी अवस्था में घिरे हुए को धावा कर विजय लेना या मर मिटना पड़ता है, परन्तु घिरी हुई कुतिया की रोटी जैसे बलवान छीन लेता है और वह चिल्लाकर मर जाती है, वैसी क्षुधार्त काली पैदा करना चाहते हैं क्या? उस भयङ्करता को आप सँभाल न सकेंगे। जबर्दस्त प्रकृति का परिवर्तन सँभालना दुष्कर होगा। आप अपने किये पर पछतायेंगे। प्रकृति काली राक्षसों के ही लिए है, देवताओं के लिए नहीं।

देवताओं का धर्म है निष्कपट होकर सबका कल्याण करना, देखना, सुनना और समय को आमोद-प्रमोद के साथ बिताना। काली कर्तव्य-लक्ष्मी होकर कहीं भी सरस्वती का उद्धार नहीं करती। आप ऐसी काली के राज्य में आकर इसे वर-दायिनी और अभय-प्रदा कर डालिये, श्मशान-भूमि में क्रोध-लोभ-द्रोह-क्षोभ-दारिद्र्य आदि को भस्म कर डालिये। इसीलिए काली ने इसे सदा के लिए धारण किया है। वह देखती है कि हमारा साधक किस प्रकार साधना करता है। जैसी साधना होगी, सिद्धि भी वैसी ही होगी। काली सुन्दरी के रूप में हो जायगी। आपके श्री-मुख से ये शब्द उच्चारित होंगे—

कलौ कालीं विहायाथ यः कश्चित् सिद्धिमिच्छति।
स भोजनं विना नूनं क्षुन्निवृत्तिमभीप्सति॥

निस्तार का मार्ग

('चण्डी' वर्ष १, सम्वत् १९९९ वि० : सन् १९४२ ई०, संख्या ११)

मार्कण्डेय-पुराणानुसार मधु और कैटभ ने ब्रह्म-देव को उत्पीड़ित किया। उस समय ब्रह्मा ने विष्णु के न जागने पर निद्रा-देवी का स्तवन आरम्भ कर दिया। स्तुत्य निद्रा-देवी ने उत्साह से पूरित भगवान् को जागृत करके, दैत्यों को मुग्ध कर उनका विनाश करवा डाला।

ब्रह्म-देव की पूज्या निद्रा-देवी को तमोगुणी समझ कर यदि हम उसका तिरस्कार करें, तो गुडाकेशत्व न मिलकर सोते-जागते संसार-सागर में हमारी जीवन-नौका की क्या गति होगी ? जो कुछ भी हमारे जागने के काम थे, वे भी गुण-हीन होकर कालिमा से काल-गुप्त हो जायँगे।

थोड़ी देर के लिए मान लो कि आपको उसी काली की मूर्ति का दर्शन कराया जाय, अन्धकार के भीतर दाँत और जीभ निकाले, काली स्त्री हाथ में खड्ग लेकर अकस्मात् आपके सामने खड़ी हो जाय, तो आपकी क्या दशा होगी ! आप खुद ही विचारिये। वैसे ही मृत्यु-काल में आपको वैसी ही छवि घोराट्टहास करती हुई दिखाई दे, तो आपके प्राण भय से पीड़ित होंगे या नहीं ? यदि पीड़ित होंगे, तो उसी से प्रीति करना आपका प्रथम कर्तव्य है।

बच्चे को किसी अन्य सुन्दरी स्त्री के बदले अपनी कलूटी मां पर ज्यादा प्रेम होता है। वही कलूटी काली आपकी मां है, जिसकी गोद में रोज-रोज शयन करते हैं, फिर भी डर नहीं। वह मेरी माँ है, ऐसी अवस्था में स्वर्ग या अपवर्ग मेरे हैं। मृत्यु भय-दायिनी नहीं, मोक्ष-दायिनी है, यह निश्चय होगा। जैसे उस माँ को आपने पहचाना नहीं, वैसे ही औरों ने भी नहीं पहचाना।

नींद आये बिना शरीर बेचैन रहता है, रोगी रहता है। भला ऐसी नींद की उपासना क्यों न की जाय, जिससे शान्ति मिले ? ऐसी भावनावाले को निद्रा तमोगुणी तथा भयाविनी प्रतीत न होगी, परन्तु शुद्ध सत्व-गुण-सम्पन्न लक्ष्मी प्रतीत होगी। आपको जगानेवाला दुष्ट साबित होगा, मूर्ख कहा जायगा। ऐसी प्रिय निद्रा से प्रीति करने का मार्ग 'तन्त्र' है, स्थान श्मशान और स्वामिनी मेरी माँ काली है।

वैकुण्ठ-स्वामी नारायण सुना जाता है कि समुद्र में सोते हैं। अपने सोने के लिये नारायण को जगाकर वैकुण्ठ के मार्ग को खोजने के बदले, निद्रा माँ की गोद में सोना ही अच्छा होगा, क्योंकि वहाँ नारायण भी सोते हैं। सोनेवाले परस्पर निद्रा के सुख की तुलना की नाप नहीं कर सकते। आप भी नारायण के तुल्य सुखानुभव करेंगे। तब वैकुण्ठ की आवश्यकता ही क्या, जब मेरा घर और माँ मेरे पास है ? निद्रावस्था में हम भी ब्रह्मा-विष्णु-महेश के तुल्य ही आनन्द लेते हैं, किसी प्रकार की विषमता नहीं।

जहाँ माँ है, वहीं उसका पुत्र है। उसने दूसरों के लिये डरावना रूप लिया है। जहाँ दूध मिला, बालक का भय भागा, उसकी क्षुधा भी भागी, पीड़ा जाती रही—न नारायण, न शिव, कोई नहीं। क्षुधा भी कई प्रकार की इच्छा-शक्तियों का ही विलक्षण भेद है। इसी की जाग ने संसार को एक-दूसरे प्राणी का शिकार बना दिया है। यदि इसका दमन किया जाय, तो तब भी यह शत्रुता करेगी और पालन से भी वही आचरण। राजा की बलवान क्षुधा प्रजा को पीड़ित करती है, प्रजा की राजा को। राजा के लिए प्रजा की क्षुधा हो, प्रजा के लिए राजा की क्षुधा हो, तो समृद्धि होगी।

निराशा में आशा, अक्षय खजाना, माँगो सो पाओ। ब्रह्मा से कीट तक एक ही न्याय है। दूसरों से माँगना अन्याय है। मां से नहीं! क्योंकि सब माँ का धन है। माँ का ही मैं, साम्राज्य, सब उसी का तो है। दूसरे से माँगने पर व्याज-सहित भरना होगा, माँ को नहीं।

यह तो आप जान ही गये कि निद्रा, क्षुधा, मृत्यु सभी को है। क्षुधा की तृप्ति के लिये पश्वादि के मांस या अन्न किसी से भी तृप्ति करो--विधि-निषेध दोनों ही मिलेंगे। हिंसा करने से केवल इतना ही विशेष होगा कि आपने किसी की गर्दन साफ की या कराई, तो किसी समय वह भी इसी तरह बदला लेगा। बकरा भी शेर होगा। उस समय आपका रोना-गाना कोई न सुनेगा, क्योंकि माँ के यहाँ न्याय है।

प्रकृति का अपना चक्र है। आज जो इन्द्र है, वह कल कीड़े के वेष में पृथ्वी पर लोटता होगा। कीट भी महेन्द्र होगा, क्योंकि माँ सम-दर्शिनी है। कितने बार राम और कृष्ण ने जन्म लिया होगा, इसकी गिनती शास्त्र को भी याद नहीं। इने-गिने भेद और मन्त्र यत्र-तत्र लिखे हैं, क्योंकि ये भी प्रकृति या उसके बालक हैं। आप भी हैं। प्रकृति के बाहर सूर्य-चन्द्र, आर-पार, बाहर-भीतर, स्वर्ग-नरक कुछ भी नहीं, तो है क्या? मात्र कङ्काल! उसी में चेतना देकर माँ उसे खेलाती, कुदाती, नचाती है। फिर उसे फेर-फार कर जहाँ-का-तहाँ मिला देती है। इसी से शाक्त माँ को ही 'सच्चिदानन्द-लहरी' कहते हैं। समुद्र की तरङ्ग उसी में लय होती है--

यद्यपि भेदापगमे नाथ! तवाहं न मामको नस्त्वम्।
सामुद्रो ही तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥

माँ ही सब कुछ, सभी पर शासन करनेवाली, सभी में व्याप्त, फिर भी अप्राप्त, नित्य तृप्त करती है, फिर भी अतृप्त, दृश्य होते हुए भी अदृश्य! 'नान्तः प्रज्ञं, न बहिः प्रज्ञं, नोभयतः प्रज्ञम्।'

'प्रज्ञा नेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं'--कौन है! खटखटाओ। जवाब नहीं। काम सब होता जाता है, छोटा था, बड़ा हो गया। कैसे हुआ? क्या जानें! इसके सिवा कोई बात हाथ ही नहीं आती।

चलो, चलो! कहाँ? मैं नहीं चलती। न चलो। वह चली गई। क्या? जवानी! फिर न लौटेगी। जानता, तो पकड़ रखता। कैसे? अफसोस! इस खेल के मैदान में किसी भी तौर से उपासना नहीं कर सकते। शब्दातीता मां भावातीता होते हुए भी 'अनन्य-चित्तत्वेन च सिद्धिः, भावनायाः उपचारः' अर्थात् अनन्य चित्त से भावना करने से सिद्धि होती है, अतः निन्दा नहीं करना।

रात-दिन का एक पिण्ड होते हुए भी वे दो हैं और प्रज्ञा से उन्हें अलग-अलग समझ भी सकते हैं। घृणा मत करना। जैसी, जिसकी अनेक भेदों से भी एक हुई प्रकृति में गुण-दोष पहचानो, सीखो, शङ्का मत करो। जो मन भावे, वही लड्डू। दूसरों के लिये भले फीका हो, मेरे लिए तो मीठा है।

जिसका जो मार्ग है, उसी से चलना होगा। 'वाम' से 'दक्षिण' कठिन है। सेवा-पूजा कुछ भी नहीं। केवल भाव-भावना ही की तरङ्ग से मन भावे, तो मां से प्रीति जोड़ो, मार्ग पूछो। सत्-पुरुष, कुल-वृद्ध, तपस्वी, श्रोत्रिय, कर्म-कुशल, निग्रहानुग्रह में समर्थ—ऐसे गुरु से या इनसे विपरीत धर्मवाले से। मां का भक्त अवश्य हो। प्रेम के सिवा कुछ भी नहीं। सभी मार्ग देश-काल, रूप-रङ्ग मां के ही हैं। प्रसन्नता से कहो--'मां काली।' बस, यही पथ है---

'सन्तन प्रतिपाली, सदा खुशाली, जय काली! कल्याण करो।'

अथवा वेद और तन्त्रों से मिश्रित रास्ते से चलो। सिवा शक्ति की उपासना के निस्तार न होगा।

कौल की सरल साधना

('चण्डी' वर्ष १ : सम्वत् १९९९—सन् १९४२ ई० : संख्या १२)

शक्ति-साधन में मुख्य रूप से तन्त्रों में प्रशंसा-परत्व 'कौल-धर्म' में सभी धर्मों का समावेश है। कौल से ऊपर कोई धर्म नहीं है। लोग कौल को 'पंच-मकार' से ही जानते हैं, परन्तु कौल-धर्म कुछ विलक्षण ही धर्म है और उसकी प्रशंसा में ग्रन्थों की भरमार है। 'कौल-धर्म' क्या है ? इसका स्पष्टीकरण ऐसा है—

अकुलं शिवमित्युक्तं कुलं शक्तिः प्रकीर्त्तिता। कुलाकुलस्य संयोगात् कौल-धर्मस्तु जायते॥

अर्थात् अकुल (शिव) और कुल (शक्ति) के संयोग को 'कौल-धर्म' कहते हैं।

योग-शास्त्र 'कौल-धर्म' के शक्ति-सम्बन्धी लक्षणों को अनेक प्रकार से व्यक्त करता है। ठीक मार्गारूढ़ योगी व्यक्ति में ऐसी शक्ति के वृद्धि-प्राप्त लक्षण देखने में आते हैं, परन्तु योग-प्रक्रिया एक तो कष्ट-साध्य है, दूसरे संसार के भीतर रहनेवाले अभ्यासी को रोगी बना देती है। नेती, धौती, नेवली, उड्याण, जालंधर बंध आदि क्रियाओं के करने में यदि चित्त थोड़ा भी चंचल हो गया, आहार-व्यवहार में यदि कुछ भी व्यक्तिक्रम हुआ और यदि गुरु पूर्ण जानकार न हुआ, तो सिवाय धोखा खाने के कुछ भी हासिल नहीं होता।

'वैदिक सम्प्रदाय' सर्व-मान्य होते हुए भी कष्ट-साध्य है। अग्नि-होत्र का व्रत धारण कर पाक-संस्था, हविः-संस्था, सोम-संस्था के यज्ञों को लोगों में व्याप्ति कम ही है। फिर कार्य-कुशल ऋत्विजों की कमी, द्रव्य की कमी और आस्था की कमी भी है।

इन दोनों मार्गों की अपेक्षा सर्व-साधारण की अधिक रुचि 'वैष्णव-धर्म' में है, परन्तु इस धर्म में शाखा-प्रशाखायें बहुत हो गई हैं, जिससे तथा कुछ प्रमाद से लोगों की रुचि बदलती जाती है। दो शाखायें तप्त-मुद्रा धारण कर भगवद्-भजन करती हैं। इनमें एक 'रामानुज-सम्प्रदाय' है और दूसरा 'माध्व सम्प्रदाय' है। दो शाखायें अतप्त-मुद्रा धारण करती हैं। उनमें एक श्री वल्लभाचार्य की है और दूसरी श्री चैतन्य महा-प्रभु की। परन्तु सबसे अधिक सार्वजनिक, साध्य और देखने में प्रिय शुद्धाद्वैत-सम्प्रदाय है। श्री शङ्कराचार्य ने इस सम्प्रदाय को बहुत ही सोच-समझकर प्रचलित किया है। यह वर्तमान समय के योग्य है, वेद-पुराण-तन्त्रों से अभिन्न है तथा भिन्न-भाव-भावनाओं से युक्त, सुख-साध्य और शान्ति-दायक है।

'शैव मत' तपः-साध्य और संयमों से भरा हुआ होने से लोगों के लिए उतना आकर्षक नहीं है। कुछ लोग शैवागमादि धर्म से अर्ध-दग्ध अभी मिलते हैं, परन्तु शास्त्र-मर्यादा से कुछ न्यून होता जाता है।

'वाम-मार्ग' भी बहुत प्राचीन और छल-रहित सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय में महर्षि और राजा से लेकर सामान्य कोटि के नर-नारी पर्यन्त रहे हैं और आज भी हैं, परन्तु प्राचीन काल में जब एक सा व्यवहार था और धन या स्त्री, मद्य-मांस—किसी बात के निषेवण में निन्दा-स्तुति न थी, तब इस मार्ग का महत्त्व स्थापित था। उस काल में तत्त्वान्वेषण करने के लिये, मनुष्यों की प्रवृत्ति और वासना को दूर हटाने के लिए तथा संसार के जीव मात्र को सम-दृष्टि से समझने के लिए, अपूर्णता हटाने के लिये और-भिन्न-भिन्न प्रकृति के भेदों को दूर करने के लिये, देशाटन में किसी प्रकार के व्यवहारों से कष्ट न हो, कोई भी कष्ट-मय काल उपस्थित हो जाय, तो कष्टकर प्रतीत न हो, इसलिए 'वाम-मार्ग' का संगठन किया गया था।

ही नहीं हुआ, अपितु वह आकर्षक रूप में 'चण्डी' के वर्ष ४७ के अंक के रूप में प्रकाशित भी हो गई। जैसा कि उक्त विवरण से प्रकट है, महर्षि वेदव्यास कृत 'लघु-चण्डी' के इस प्रकाशन का श्रेय पूज्य श्री बप्पा 'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी को ही कृपा को है। इस 'लघु चण्डी' की अनेक विशेषतायें हैं।

पहली विशेषता तो यही है कि इसमें श्री दुर्गा के तीनों चरितों की कथा महर्षि वेदव्यास के शब्दों में वर्णित है। महर्षि वेदव्यास अष्टादश पुराणों के रचयिता के रूप में ही चिर-स्मरणीय नहीं हैं, सनातन धर्म के मूल स्रोत वेदों को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय भी उन्हीं को है। वे चिरंजीवी माने गए हैं और 'शाश्वत' कहलाते हैं। महा-भारत के सङ्कलन-कर्ता और वेदान्त-दर्शन के स्थापन करनेवाले भी वेदव्यास जी ही हैं। वे ब्रह्मा या विष्णु के अवतार माने गए हैं। यही नहीं, वे गुरुओं के भी गुरु हैं। गुरु पूर्णिमा वास्तव में व्यास-पूर्णिमा ही है और गुरु-रूप में महर्षि वेदव्यास का ही पूजन होता है। अतः उनके द्वारा रचित 'चण्डी'-पाठ के पारायण की महिमा का अनुमान सहज ही में किया जा सकता है।

महर्षि वेदव्यास कृत 'लघु-चण्डी' की दूसरी महती विशेषता यह है कि इसके तीनों चरित स्पष्ट रूप से क्रमशः महा-काली, महा-लक्ष्मो एवं महा-सरस्वती से पाठकर्ता का तादात्म्य स्थापित कराते हैं। प्रथम चरित के अन्त में सुमेधा मुनि महाराज सुरथ से स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि—

एवं देवी समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता नृप ! महा-काली महाराज ! सर्व-योगेश्वरेश्वरी ॥५९

अर्थात् ब्रह्माजी के स्तुति करने पर देवी महा-काली का आविर्भाव हुआ।

इसी प्रकार मध्यम चरित के प्रारम्भ होने के पूर्व मुनि सुमेधा का वाक्य है कि—

महालक्ष्म्यास्तथोत्पत्तिं निशामय मही-पते ॥६०

अर्थात् हे राजन् ! महा-लक्ष्मी की उत्पत्ति की कथा सुनो। मध्यम चरित के अन्त में भी इस बात की पुष्टि उन्होंने निम्न वाक्य द्वारा की है—

एवं लक्ष्मी समुत्पन्ना महिषासुर-मर्दिनी।

अर्थात् इस प्रकार महिषासुर का नाश करनेवाली लक्ष्मी आविर्भूत हुई।

उत्तम चरित के प्रारम्भ के पूर्व मुनि सुमेधा का वाक्य है—

राजन् ! शृणु सरस्वत्याः प्रादुर्भावो यथाऽभवत्।

अर्थात् हे राजन् ! अब सुनो कि सरस्वती का प्रादुर्भाव कैसे हुआ।

उत्तम चरित के अन्त में पुनः इन तीनों महा शक्तियों का स्मरण निम्न प्रकार किया गया है—

एवं ते वर्णितो राजन् ! प्रादुर्भावो अति-रम्यकः। काल्याश्च महा-लक्ष्म्या सरस्वत्याः क्रमेण च ॥

अर्थात् हे राजन् ! इस प्रकार तुमसे कालो, महा-लक्ष्मी और सरस्वती के अति सुन्दर प्रादुर्भाव का वर्णन किया गया।

इतनी स्पष्टता के साथ मार्कण्डेय ऋषि कृत 'श्रीदुर्गा सप्तशती' में महा-काली, महा-लक्ष्मी, और महा-सरस्वती का उल्लेख नहीं मिलता, जिससे कुछ विद्वान् भ्रमित होते भी दिखाई देते हैं और इस विषय में तर्क-वितर्क भी करते हैं किन्तु महर्षि वेद-व्यास कृत इस 'लघु-चण्डी' में ऐसे किसी प्रकार के सन्देह का अवसर ही नहीं है। पाठ-कर्ता को स्पष्ट ज्ञात रहता है कि प्रथम चरित महा-काली का है, मध्यम चरित महा-लक्ष्मी का और उत्तम चरित महा-सरस्वती का है।

तीसरी और सर्वोपरि विशेषता इस 'लघु-चण्डी' की यह है कि इसमें पूर्व-पीठिका के ४, प्रथम चरित के ६०, मध्यम चरित के ३५, उत्तम चरित के ५९ अर्थात् कुल ४+६०+३५+५९=२५८ श्लोक हैं, जिनमें तीन अर्द्ध-श्लोकों को यदि जोड़ दिया जाय, तो १६१ श्लोक कुल होते हैं। इनका पाठ करना कितना सरल है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक : ऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, इलाहाबाद—६

रजि० सं० ३२९८१/५७]   अक्टूबर, १९८८   [रजि० सं० ए० डी० ९६

श्री हंस गायत्री
आनन्द सत्सङ्ग
बम्बई
के
प्रतिष्ठापक
श्री के० राम अय्यर जी
धर्म-पत्नी के साथ

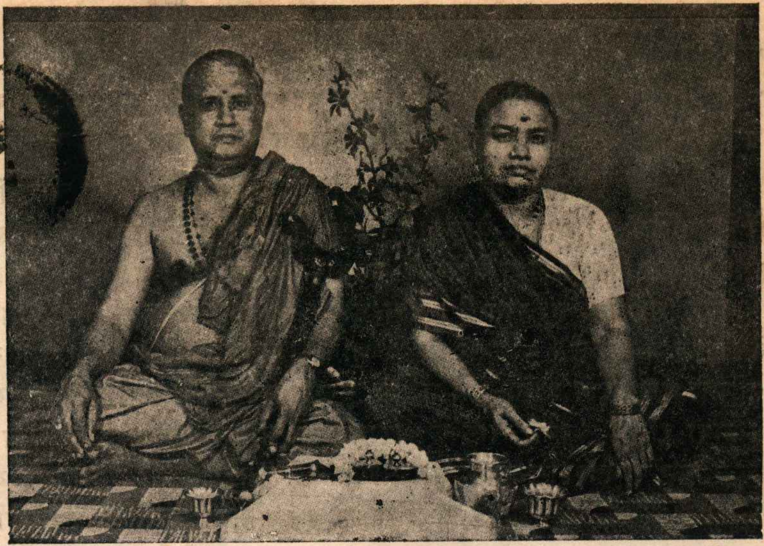

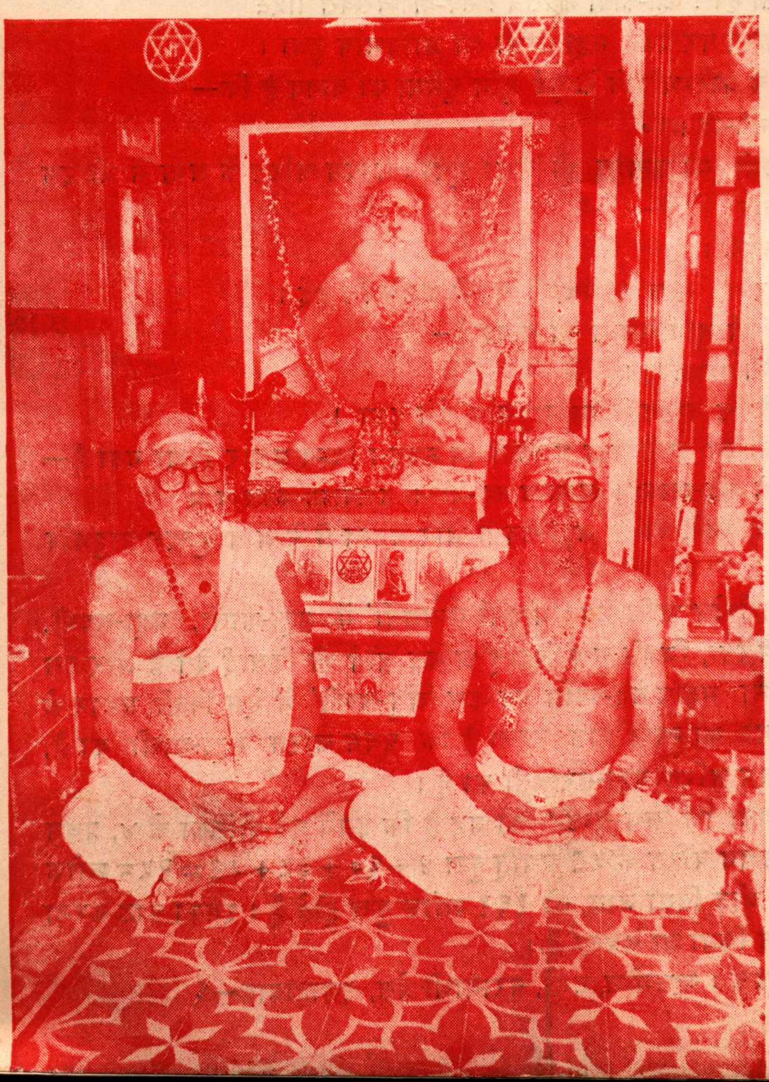

श्री के० राम अय्यर जी
एवं
पूर्णाभिषिक्त सहोदर
श्री के० पी० स्वामी जी